अपभ्रंश और हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

निर्देशक :

डा० माता बदल जायसवाल
(अवकाश प्राप्त प्रोफेसर)
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्त्री :

अलका गुप्ता
एम० ए० (हिन्दी)

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

1992

प्राक्कथन

प्राक्कथन

हिन्दी विषय लेकर एम0ए0 उत्तीर्ण होने के पश्चात् मुझमें शोध करने की इच्छा हुई। एम0 ए0 में ही मैंने प्राकृत अपभ्रंश का विशेष अध्ययन किया था इसलिए अपभ्रंश में शोध करने की ओर विशेष ध्यान गया। हिन्दी विभाग में मैंने शोध के लिए आवेदन पत्र दिया तो मुझे अपभ्रंश और हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन डी0फिल0 उपाधि के लिए मिला।

अपभ्रंश भाषा और व्याकरण का प्राचीन भारत में हेमचन्द्र, त्रिविक्रम, मार्कण्डेय ने विशेष अध्ययन किया है और आधुनिक युग में विदेशी विद्वान पिशेल और जैकोबी ने प्राकृत अपभ्रंश में विशेष अध्ययन प्रस्तुत किय है। भारतीय विद्वानों मे डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ0 तगारे, डॉ0 सुकुमार सेन, वीरेन्द्र श्रीवास्तव, नामवर सिंह, देवेन्द्र कुमार शिव सहाय पाठक ने अपभ्रंश में विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया है। किन्तु अभी तक अप और हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन पर किसी ने काम नहीं किया है। इसलिए मैंने जब शोध के लिए आवेदन पत्र दिया तो मुझेअमाता बदल जायसवाल ने इस विषय का सुझाव दिया इसके पश्चात् तत्कालीन हिन्दी विभाग अध्यक्ष तथा कला संकाय ने मेरे विषय को डी0 फिल0 उपाधि के लिए स्वीकार कर लिया और मेरी शोध यात्रा आरम्भ हुई।

सम्पूर्ण शोध- प्रबन्ध कुल आठ अध्यायों में वर्गीकृत है। प्रथ
अध्याय में भाषा, भाषा विज्ञान औरभाषा विज्ञान की शाखाओं का वर्ण
किया गया है ।

दूसरे अध्याय में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा, मध्यकालीन
भारतीय आर्य भाषा, आधुनिक भारतीय आर्य भाषा अवहट्ट और आधुनि
हिन्दी का वर्णन है ।

तीसरे अध्याय में अपभ्रंश और हिन्दी संज्ञा के लिंग, वचन,
का उल्लेख किया है ।

चौथे अध्याय में अपभ्रंश और हिन्दी के सर्वनाम, पाँचवे अध्य
में अपभ्रंश और हिन्दी के विशेषण,, छठे अध्याय में क्रिया रचना और सा
अध्याय में अव्यय है तथा आठवे में निष्कर्षवाउपसंहार दिया गया है।

अपभ्रंश और हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों के तुलनात्मक अ
से निश्चित रूप से भाषा साहित्य के इतिहास में एक नई महत्वपूर्ण कड़ी
है निष्कर्ष रूपमें यही कहा जा सकता है कि अपभ्रंश और हिन्दी की
व्याकरणिक कोटियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाताहै कि अप
और हिन्दी का व्याकरणिक दृष्टि से निकटतम् संबंध है।

यद्यपि प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध मेरी मौलिक रचना है किन्तु इ
मौलिकता को जन्म देने का श्रेय मेरे निर्देशक गुरूवर्य को ही है, जो उनके
द्वारा दिए गए स्पष्ट दिशा निर्देश द्वारा ही संभव हो सका है। कार्य

सम्पूर्ण शोध- प्रबन्ध कुल आठ अध्यायों में वर्गीकृत है। प्रथम अध्याय में भाषा, भाषा विज्ञान औरभाषा विज्ञान की शाखाओं का वर्णन किया गया है ।

दूसरे अध्याय में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा, आधुनिक भारतीय आर्य भाषा अवहट्ट और आधुनिक हिन्दी का वर्णन है ।

तीसरे अध्याय में अपभ्रंश और हिन्दी संज्ञा के लिंग, वचन, कारक का उल्लेख किया है ।

चौथे अध्याय में अपभ्रंश और हिन्दी के सर्वनाम, पाँचवे अध्याय में अपभ्रंश और हिन्दी के विशेषण,, छठे अध्याय में क्रिया रचना और सातवें अध्याय में अव्यय है तथा आठवे में निष्कर्षयाउपसंहार दिया गया है।

अपभ्रंश और हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों के तुलनात्मक अध्ययन से निश्चित रूप से भाषा साहित्य के इतिहास में एक नई महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ी है निष्कर्ष रूपमें यही कहा जा सकता है कि अपभ्रंश और हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाताहै कि अपभ्रंश और हिन्दी का व्याकरणिव दृष्टि से निकटतम् संबंध है।

यद्यपि प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध मेरी मौलिक रचना है किन्तु इस मौलिकता को जन्म देने का श्रेय मेरे निर्देशक गुरूवर्य को ही है, जो उनके द्वारा दिए गए स्पष्ट दिशा निर्देश द्वारा ही संभव हो सका है। कार्य को

दुरूहता, जटिलता व विषमता से मैं अत्यधिक हतोत्साहित हो गयी थी। प्रस्तुत कार्य की इति भी संभवत: इस जीवन में कभी न होती यदि गुरूवर्य की असीम, अपार स्नेह, सौम्य- स्वभाव, मधुर व्यवहार एवं रामबाण की भाँति वचनोपदेशों का सम्बल न मिला होता। कार्य की पूर्णता का समस्त श्रेय भाषिकी एवं प्राकृत -अपभ्रंश के विशेषज्ञ योग्य गुरूवर्य को ही है। भविष्य में इनका निर्देशन यदि मेरे इस औपचारिकता को संतुष्ट कर सका तो मैं अपने को धन्य समझ सकूंगी।

निर्देशक और शोध छात्रा को अपभ्रंश और हिन्दी की व्याकरणिक कोटि को पार करने में अनेक विद्वानों से परोक्ष तथा प्रत्यक्ष सहयोग मिला है। इन महानुभावों में सर्वश्री डॉ0 रामसिंह तोमर, डॉ0 सरयू प्रसाद अग्रवाल डॉ0 उदयनारायण तिवारी, भोलानाथ तिवारी, वीरेन्द्र श्रीवास्तव, देवेन्द्रकुमार डा0 नामवर सिंह तथा अन्य विद्वान प्रवक्ताओं के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ जिनके ग्रन्थों तथा प्रत्यक्ष सम्पर्क से मुझे अभिप्रेरणा तथा निर्देशन मिला है। हिन्दी विभाग के वर्तमान अध्यक्ष डॉ0 राजेन्द्र कुमार वर्मा जी की कृपा से यह शोध प्रबन्ध परीक्षार्थ प्रस्तुत कर रही हूँ, उसके लिए मैं आजीवन आभारी रहूँगी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद पुस्तकालय से मुझे पुस्तकें मिली उनकी मैं आभारी हूँ। मेरे माता-पिता श्रद्धेय अरूण गुप्ता एवं श्री भगवान स्वरूप गुप्ता ने शोध कार्य करने का शुभ अवसर प्रदान किया तथा अनेक प्रकार की सहायता दी उन्हें धन्यवाद देकर मैं उनकी महत्ती कृपा का मूल्य कम करना नहीं चाहती। कदम- कदम पर तर्क - वितर्क के द्वारा प्रस्तुत शोध-

प्रबन्ध को निखारने का श्रेय अनुज गोपाल गुप्ता एव संजय गुप्ता को है ।

भाषा व्याकरणिक सम्बन्धी शोध- प्रबन्ध का टंकक एव दुरूह कार्य है और इस कार्य का टंकक राजबहादुर पटेल, खन्ना ब्रदर्श, कटरा इलाहाबाद ने बड़ी जागरूकता एवं सावधानी के साथ पूरा प्रयास किया है, उनके लिए मैं विशेष आभार व्यक्त करती हूँ ।

अन्त में मैं हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति सविशेष अनुगृहीत हूँ जिसके तत्वाधान में मेरा यह कार्य सम्पन्न हो सका है ।

2 दिसम्बर, 1992 ई0

अलका गुप्ता
- अलका गुप्ता

विषयानुक्रम

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या-

पहला - अध्याय

भाषा

व्याकरणिक कोटियाँ

प्रथम - अध्याय

भाषा -

भाषा की परिभाषा के सम्बन्ध में व्यापक एवं विशिष्ट , दो दृष्टियों से, विचार किया जा सकता है। व्यापक दृष्टि से भाषा जीवित प्राणी के संवेदनात्मक, भावात्मक एवं ऐच्छिक (- प्रावृत्तिक) अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है । इस प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए कायिक एवं वाचिक- दोनों प्रकार की इन्द्रियों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है । कायिक संचालन द्वारा " अंगविक्षेप भाषा " तथा "वाक्" द्वारा "वाग् भाषा" आविर्भूत होती है । अंग विक्षेप भाषा के अन्तर्गत ही विविध प्रकार के निम्न श्रेणी के पशुओं की अभिव्यक्ति की परिगणना की जा सकती है । किन्तु विशिष्ट दृष्टि से भाषा" यादृच्छिक वाक्- प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से मानव- समुदाय परस्पर व्यवहार करता है। " इस परिभाषा के अनुसार भाषा मानव -कंठ से उद्गीर्ण सार्थक ध्वनियों तक ही सीमित है और आज विश्व में कोई ऐसा मानव- समुदाय नहीं है जिसकी अपनी भाषा नहीं है ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अतः समाज में रहने के नाते उसे सर्वदा आपस में विचार-विनिमय करना पड़ता है । कभी हम स्फुट शब्दों या वाक्यों द्वारा अपने को प्रकट करते हैं, तो कभी केवल सर हिलाने से हमारा

काम चल जाता है । समाज के धनी वर्ग में निमंत्रण देने के लिए पत्र लिखे या छपवाये जाते हैं, तो गरीबों में या कुछ जातियों में हल्दी या सुपारी देना ही पर्याप्त होता है । स्काउट लोगों का विचार विनिमय झंडियों द्वारा होता है, तो बिहारी के पात्र 'भरे भवन में करत हैं नयनन ही सों बात।' चोर लोग अँधेरे में एक दूसरे का हाथ दबाकर ही अपने को प्रकट कर लिया करते हैं । इसी प्रकार करतल -ध्वनि, हाथ हिलाकर संकेत करना (पास बुलाने, दायें - बायें हटने या कहीं भेजने आदि के लिए), चुटकी बजाना, आँख घुमाना, आँख दबाना, खाँसना मुँह बिचकाना या टेढ़ा करना, उँगली दिखाना तथा गहरी साँस लेना आदि अनेक प्रकारके साधनों द्वारा हमारे विचार-विनिमय का कार्य चलता है। इन साधनों को हम निम्नांकित तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं ।

(क) पहले वर्ग में वे साधन हैं, जिनके द्वारा अभिव्यक्त विचारों का ग्रहण स्पर्श द्वारा होता है, जैसे चोरों का हाथ दबाना ।

(ख) दूसरे वर्ग में वे साधन आते हैं, जिनके द्वारा व्यक्त विचारों को समझने के लिए आँख की आवश्यकता होती है । हल्दी बाँटना, स्काउटों की झंडी दिखलाना या हाथ हिला - कर संकेत करना आदि इसी वर्ग के हैं ।

(ग) तीसरे वर्ग में सर्वाधिक प्रचलित तथा महत्वपूर्ण साधन आते हैं, जिनके द्वारा व्यक्त भावों का ग्रहण कान द्वारा होता है । इनका सम्बन्ध ध्वनि से होताहै । करतल- ध्वनि, चुटकी बजाना, तार बाबू का टरा-टक्कू या गर-गट्ट करना, या बोलना आदि इस वर्ग के विचार- विनिमय के साधन।

व्यापक रूप से विचार-विनिमय के उपर्युक्त तीनों[1] ही साधनों को भाषा कहा जा सकता है। किन्तु साधारणतया भाषा का इतना विस्तृत अर्थ नहीं लिया जाता । वह केवल साधनों के अंतिम या तीसरे वर्ग तक ही सीमित मानी जाती है ।

प्लेटो ने " सोफिस्ट " में विचार और भाषा के संबंध में लिखते हुए कहा है कि विचार और भाषा में थोड़ा ही अंतर है। " विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती हैं तो उसे भाषा की संज्ञा देते है " स्वीट के अनुसार -

" ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है । वान्द्रिए कहते हैं ,"भाषा एक तरह का चिन्ह है । चिन्ह से आशय उन ध्वनि प्रतीकों से है जिनके द्वारा मानव अपना विचार दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं, जैसे नेत्रग्राह्य, श्रोत्रग्राह्य और स्पर्शग्राह्य । वस्तुतः भाषा की दृष्टि से श्रोत्रग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है ।" आधुनिक भाषा शास्त्रियों में अधिकांश ने भाषा की परिभाषा लगभग एक-सी दी है । उदाहरणार्थ ब्लॉक तथा ट्रेगर - A language isa a system of arbitrary vocal symbols by means of which a society

---

1- इन तीन के अतिरिक्त नासिका आदि अन्य इन्द्रियों से भी विचार-विनिमय हो सकता है, किन्तु प्रायः उपर्युक्त तीन का ही प्रयोग होता है ।

group cooperates. स्त्रुतेवाँ -A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which members of a social group cooperate and interact.

Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which, human beings, members of a social group and participants in culture interact and communicate.

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका ।

" व्यक्त करने या कहने अथवा प्रकाशित होने का माध्यम " अर्थात् " विचार व्यक्त करना" या " मनोभावों को कहना" अथवा " मनोभावों को प्रकाशित होना- ये जिस साधन से सम्पादित होते हैं, उसे भाषा कहा जाता है । सामान्यत: ऐसा कहा जाता है कि " जिस साधन से हम अपने भाव या विचार दूसरों तक पहुंचा सके वह भाषा है ।

भाषा में मूलभूत बातें निम्नांकित पांच हैं -

(1) भाषा प्रयोक्ता के विचार आदि को श्रोता या पाठक आदि तक पहुँचाती है, अर्थात् वह विचार-विनिमय का साधन होती है ।

(2) भाषा निश्चित प्रयत्न के फलस्वरूप मनुष्य के उच्चारणावयवों से नि:सृत ध्वनि- समष्टि होती है । इसका आशय यह है कि अन्य साधनों से अन्य प्रकार की ध्वनियाँ (जैसे चुटकी बजाना, ताली बजाना, आदि) से भी विचार-विनिमय हो सकता है, किन्तु वे भाषा के अन्तर्गत नहीं है ।

§3§ भाषा में प्रयुक्त ध्वनि- समष्टियाँ § या शब्द§ सार्थक तो होती हैं, किन्तु उनका भावों या विचारों से कोई सहजात सम्बन्ध नहीं होता । यह संबंध " यादृच्छिक" या " माना हुआ" होता है इसीलिए भाषा में यादृच्छिक ध्वनि प्रतीक (arbitrary vocal symbol) होते हैं । यदि शब्द या भाषा में प्रयुक्त ये सार्थक ध्वनि - समष्टियां यों ही मानी हुई या यादृच्छिक § Arbitrary § न होती तो संसार की सभी भाषाएं लगभग एक - सी होतीं । हिन्दी का "भाषा " शब्द अंग्रेजी में "लैंग्विज" फ़ारसी में " ज़बान" रूसी में 'यज़िक " जर्मन में " स्प्राखे ",अरबी में " लिस्सान" तथा ग्रीक में "लेइखेइन न होता ।

§4§ भाषा में एक व्यवस्था § system § होती है। भाषा अव्यवस्थित नहीं है इस सम्बन्ध में यह भी कह देना अप्रासंगिक न होगा कि अत्यंत प्राचीन काल में भाषा अपेक्षाकृत अधिक अव्यवस्थित रही होगी । ज्यों- ज्यों विकास हो रहा है हमारी भाषाएं अधिक व्यवस्थित और नियमित होती जा रही है । एसपेरैंतो जैसी कृत्रिम भाषाएं तो पूर्णत: व्यवस्थित हैं, और उनमें तो अपवाद जैसी कोई चीज ही नहीं है ।

§5§ एक भाषा का प्रयोग एक विशेष वर्ग या समाज में होता है । उसी में वह बोली और समझी जाती है ।

उपर्युक्त सारी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए भाषा की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी जा सकती है -

भाषा, उच्चारण - अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक (Arbitrary) ध्वनि - प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान- प्रदान करते हैं ।

भाषा के अंग -

भाषा के पाँच अंग होते है । (1) ध्वनि, (2) पद, (3) वाक्य (4) शब्द कोश और (5) अर्थ

ध्वनि भाषा की लघुतम इकाई है। कई ध्वनियाँ मिलकर जब सार्थक हो जाती है तो उसे पद कहते है । कई पद मिलकर जब वक्ता के सम्पूर्ण अर्थ को व्यक्त करते हैं या सम्पूर्ण मन्तव्य को व्यक्त करते हैं तब उसे वाक्य कहते है। वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है यही सहज इकाई है अर्थात् वक्ता वाक्य ही बोलता है। चाहे वह वाक्य एक ध्वनि का हो, एक पद का हो चाहे अनेक शब्दों का समुच्चय हो । किसी भाषा के स्वतन्त्र शब्दों का जो समस्त संकलन है उसी को शब्दकोष कहते है। प्रत्येक पद का कोई न कोई अर्थ होता हैं चाहे व्याकरणिक हो या कोषात्मक अर्थ हो ।

भाषा के इन्हीं पांचो अंगो का जो भाषा वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है । उसी अध्ययन को "भाषा विज्ञान" की संज्ञा दी जाती है।

भाषा विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत प्रमुखत: पाँच शाखाएं आती है ।

§1§ वाक्य विज्ञान §2§ पद विज्ञान §3§ शब्द विज्ञान §4§ ध्वनि विज्ञान और §5§ अर्थ विज्ञान

§1§ वाक्य विज्ञान -

भाषा का प्रधान कार्य विचार- विनिमय है और विचार-विनिमय वाक्यों द्वारा किया जाता है; अतः वाक्य ही भाषा में सबसे अधिक स्वभाविक और महत्वपूर्ण अंग माना जाता है । भाषा- विज्ञान के जिस विभाग मेंइसका अध्ययन होता है उसे "वाक्य-विज्ञान" "वाक्य विचार" या वाक्य- रचनाशास्त्र कहते हैं । इसके तीन रूप हैं -§1§ समकालिक, §2§ ऐतिहासिक तथा§3§ तुलनात्मक । वाक्य रचना का सम्बन्ध बहुत कुछ बोलने वाले समाज के मनोविज्ञान से होता है । वाक्य विज्ञान में वाक्य का अध्ययन पदक्रम, अन्वय, निकटस्थ अवयव, केन्द्रिकता, परिवर्तन के कारण, परिवर्तन की दिशाएँ आदि दृष्टियों से किया जाताहै । इसलिए भाषा विज्ञान की यह शाखा बहुत कठिन है ।

§2§ पद विज्ञान-

वाक्य का निर्माण पदों या रूपों से होता है, अतः वाक्य के बाद रूप या पद का विचार आवश्यक है । इसे रूप विचार या पद रचना शास्त्र भी कहा गया है। रूप विज्ञान के अन्तर्गत भाषा के वैयाकरणिक रूपों के विकास, उसके कारण, तथा धातु उपसर्ग, प्रत्यय आदि उन सभी उपकरणों

पर विचार करना पड़ता है, जिनसे रूप बनते हैं । रूप- निर्माण प्रक्रिया भी उसमें आती है । इसका भी अध्ययन समकालिक तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक इन तीनों ही रूपों में हो सकता है ।

§3§ शब्द विज्ञान -

रूप या पद का आधार शब्द है । शब्दों की रचना पर तो रूप विज्ञान में विचार करते हैं, किन्तु शब्दों का वर्गीकरण व्यक्ति या भाषा के शब्द- समूह में परिवर्तन के कारण और दिशाओं आदि का विचार इसके अन्तर्गत आता है । कोश विज्ञान तथा व्युत्पत्ति-शास्त्र भी शब्द-विज्ञान के ही अंग है । शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है, प्रमुखतः व्युत्पत्तियों के प्रसंग में । किसी भाषा के शब्द- समूह के अध्ययन के आधार पर उसे बोलने वाले के सांस्कृतिक इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है ।

§4§ ध्वनि विज्ञान -

शब्द का आधार ध्वनि है। ध्वनि विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनियों पर अनेक दृष्टियों से विचार किया जाता है । इसके अन्तर्गत फ़ोनेटिक्स § Phonetics § या ध्वनि - शास्त्र एक उप विभाग है, जिसमें ध्वनि से सम्बन्ध रखने वाले अवयवों § मुख- विवर, नासिका-विवर, स्वर तन्त्री तथा ध्वनि यंत्र आदि§, ध्वनि उत्पन्न होने की क्रिया तथा ध्वनि लहर

और उसके सुने जाने आदि का अध्ययन होता है। किसी भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का वर्णन और विवेचन आदि भी इसी के अन्तर्गत आता है। ध्वनि प्रक्रिया इसका दूसरा उपविभाग है, जिसमें ध्वनि-परिवर्तन या ध्वनि-विकास पर, उसके कारणों और दिशाओं के विश्लेषण के साथ विचार होता है। इस अध्ययन के दो रूप हैं; एक तो ऐतिहासिक और दूसरा तुलनात्मक। इसमें एक कुल की भाषाओं केलिकर ध्वनि-विकास पर विचार कर नियम-निर्धारण होता है। ग्रिम- नियम का सम्बन्ध इसी से है। इसमें भाषा विशेष के इतिहास का भी ध्वनि की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। ध्वनि-विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनिग्राम-विज्ञान या फ़ोनीमिक्स आदि कुछ नये उप-विभाग भी है।

§5§ अर्थ विज्ञान -

भाषा का शरीर, वाक्य से चलकर ध्वनि की इकाई पर समाप्त होता है। इसके बाद उसकी आत्मा पर विचार करना पड़ता है। आत्मा से हमारा तात्पर्य "अर्थ" से है। शब्दों के अर्थ का विवेचन आधुनिक भाषा-विज्ञानविदों के अनुसार भाषा-विज्ञान के क्षेत्र का न होकर, दर्शन के क्षेत्र का है। भाषा विज्ञान का विवेच्य 'भाषा" है, और भाषा की आत्मा है उसका अर्थ। ऐसी स्थिति में वाक्य, शब्द- ध्वनि आदि पर विचार- जो मात्र शरीर या वाह्य हैं - यदि भाषा- विज्ञान के विषय हैं तो अर्थ जो भाषा की आत्माहै पर विचार तो और भी आवश्यक विषय है, और सत्य

तो यह है कि उसके बिना भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन निश्चय अधूरा है। अर्थ का अध्ययन भी समकालिक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक तीनों ही रूपों मे हो सकता है। अर्थ विज्ञान में प्रमुख रूप से शब्दों के अर्थ में विकास और उनके कारणों पर विचार किया जाता है। साथ ही अर्थ और ध्वनि के सम्बन्ध, पर्याय, विलोम आदि के भी विवेचन उसमें समाहित हैं। इसे अर्थ विचार या अर्थ- उद्- बोधन शास्त्र भी कहा गया है ।

व्याकरणिक कोटियाँ

व्याकरण का सूत्रपात भाषा- विकास के साथ ही हुआ, क्योंकि व्याकरण का अध्ययन- अध्यापन अतिप्राचीन काल से ही प्रचलित था । वैदिकयुगीन साहित्य में ही व्याकरण के अनेक उच्च कोटि के ग्रन्थ यथा- निरूक्त, निघण्टु, पदपाठ, आदि उपलब्ध होते हैं । कालान्तर में संस्कृत साहित्य मे हमें व्याकरण के अनेक ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें पाणिनि की "अष्टाध्यायी" पतञ्जलि का " महाभाष्य' तथा भट्टोजी दीक्षित की "सिद्धान्त - कौमुदी" उल्लेखनीय हैं। व्याकरण का अध्ययन -अध्यापन भाषाज्ञान, शुद्ध उच्चारण तथा अर्थबोध के लिए आवश्यक समझा गया था ।

व्याकरण, सिद्धान्त - रूप में वाक्य अथवा वाक्य में प्रयुक्त शब्दों (पदों) का क्रमबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत करता है। लेकिन शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का विनिश्चयन अथवा नियमन व्याकरण का कार्य नहीं,

" वह तो शब्दों की रचना- प्रकृति और उनके व्यवहार-धर्म की व्याख्या भर कर सकता है। अपने अर्थ- नियमन आदि में शब्द स्वयं समर्थ हैं । "[1] इस प्रकार व्याकरण का कार्य रह जाता है वाक्य में प्रयुक्त शब्दों या पदों का अध्ययन विश्लेषण तथा उनमें पारस्परिक सम्बन्ध का स्पष्टीकरण । अतः व्याकरणिक कोटियों के निर्धारण के सन्दर्भ में भाषा- विशेष का पदग्रामिक अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। पद- रचना में वस्तुतः दो तत्व पाये जाते हैं - अर्थतत्व एवं सम्बन्धत्व । उक्त तत्वों के आधार पर ही भाषा में अर्थबोध सम्भव होता है । संस्कृत में, "प्रकृति" से अर्थतत्व का और "प्रत्यय" से सम्बन्ध तत्व का बोध होताहै । पद अथवा वाक्य का विश्लेषण इस प्रकार, प्रकृति और प्रत्यय के रूप में होता है । " प्रकृति तत्व के वे आधारभूत अंग हैं जिनसे भिन्न-भिन्न अर्थो- अभिधेय वस्तुओं, भावों अथवा व्यापारों - का बोध होताहै। जिस तत्व में वस्तु अथवा भावों को व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती , उसे प्रत्यय तत्व कहते हैं ।"[2] इस प्रकार हम देखते है कि प्रकृति या अर्थतत्व से किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु, भाव या विचार आदि का बोध होता है तो प्रत्यय या सम्बन्धतत्व से प्रकृति के विभिन्न रूपों में परस्पर सम्बन्ध का। प्रकृति का कोई कोशात्मक अर्थ अवश्य होता है, पर वाक्य में प्रयुक्त होने के लिए इसे प्रत्यय अथवा सम्बन्धतत्व

1- डॉ० सत्यकाम वर्मा, भाषातत्व और वाक्यपदीय, प्रथम संस्करण; पृ० 17

2- डॉ० मुरारी लाल अप्रेति:, हिन्दी में प्रत्यय विचार, प्रथम संस्करण, पृ० 20

का सहारा अवश्य लेना होता है। कोई भी प्रकृति बिना सम्बन्धतत्व के वाक्य में प्रयुक्त नहीं हो सकती । यह दूसरी बात है कि वाक्य में प्रयुक्त होने पर अपनेस्वरूप अथवा स्थान- विशेष के कारण प्रकृति अथवा अर्थतत्व से ही सम्बन्धतत्वका भीबोध हो जाय ।

विभिन्न भाषाओं में सम्बन्धतत्व के रूप भिन्न-भिन्न होते हैं । इसका प्रमुख कारण भाषाओं की अपनी प्रकृतिगत विभिन्नता है। अर्थ की दृष्टि से सम्बन्धतत्व अथवा प्रत्ययों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता । वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही वे प्रकृति के साथ अर्थ बोध कराते हैं । डॉ० मुरारी लाल उप्रैति: के शब्दों में " शब्द के जिस अंश में स्वतंत्र अस्तित्वद्योतक कोई अर्थ गर्भित नहीं होता और वाक्य में स्वतंत्रतापूर्वक प्रयुक्त होने की क्षमता जिसमें नहीं होती तथा जो प्रकृति- मूल प्रकृति अथवा व्युत्पन्न प्रकृति अथवा पद प्रकृति के आश्रय से उसके पूर्व अथवा पश्चात् आकर अर्थवान् होता है, उसे प्रत्यय कहते हैं । " इस आधार पर प्रत्ययों के सामान्यतः दो भेद किये जाते हैं - ।- व्याकरणिक प्रत्यय और §2§ व्युत्पादक प्रत्यय । व्याकरणिक प्रत्ययों से आशय उन प्रत्ययों से है जिनसे व्याकरणिक रूपों की निष्पत्ति होती है । इन्हें स्वतन्त्र सम्बन्धतत्व भी कहा जाता है । हिन्दी के कारक- चिन्हों को हम व्याकरणिक प्रत्यय की संज्ञा दे सकते हैं । व्युत्पादक प्रत्यय किसी धातु अथवा प्रातिपदिक में अपने को घुल मिला कर अर्थतत्व की सहायता करते हैं । इस प्रकार व्युत्पादक प्रत्ययों के योग से विभिन्

धातुरूपों एवं प्रातिपदिकों की सिद्धि होती है। हिन्दी में दो प्रकार के व्युत्पादक प्रत्यय मिलते हैं - 1- पूर्व- प्रत्यय, 2- पर प्रत्यय । इन्हें क्रमशः उपसर्ग एवं परसर्ग भी कहा जाता है। इस बात को एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट कर लेना अधिक अच्छा होगा । जैसे- राम ने रावण को बाण से मारा । वाक्य में राम, रावण, बाण तथा मारना प्रकृति अथवा अर्थतत्व हैं जबकि " ने, को, से," सम्बन्ध स्थापित करने वाले व्याकरणिक प्रत्यय अथवा सम्बन्धतत्व । इनकी अनुपस्थिति में राम, रावण, बाण तथा मारना से केवल शब्दकोशीय अर्थ का बोध होता है, व्याकरणिक अर्थ का नहीं । अतः वाक्य के अन्तर्गत ये अर्थबोध कराने में सक्षम नहीं है। " ने, को, से " अतिरिक्त एक और प्रत्यय "मारा" शब्द में है। " मारना" शब्द में भूतकालवाची प्रत्यय जुड़ा हुआ है । इस प्रकार हम देखते है कि "ने, को, से " सम्बन्धतत्व के अयोगात्मक रूप हैं और "मारा" क्रिया में भूतकालवाची प्रत्यय सम्बन्धतत्व का योगात्मक रूप । ये व्याकरणिक प्रत्यय हैं । इन्हीं व्याकरणिक प्रत्ययों को सामूहिक रूप से व्याकरणिक कोटियों की संज्ञा दी जा सकती है ।

व्याकरणिक कोटियाँ वस्तुतः वाक्यात्मक एवं पदात्मक महत्व की होती हैं और वे वाक्यान्तर्गत पदों के पारस्परिक सम्बन्धों कोअभिव्यक्त करती है । प्रो0 जे0 वेन्द्रीज के शब्दों में - " जिन पदात्मक रूपों से व्याकरणिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति होती है, उन्हें हम व्याकरणिक कोटियों

की संज्ञा दे सकते हैं । अतः भाषा में लिंग, वचन, पुरूष, काल अर्थ, प्रश्न एवं निषेध, अन्योन्याश्रय - सम्बन्ध, तादर्थ्य कारण आदि, व्याकरणिक कोटियाँ हैं।" अस्तु अब यह स्पष्ट है कि व्याकरणिक कोटियाँ पदात्मक रूपों में परस्पर व्याकरणिक सम्बन्धों को अभिव्यक्त करती हैं । वस्तुतः प्रत्येक पद श्रेणी के समान्तर जो परस्पर सम्बद्ध विभक्तिमूलक प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं, उन्हीं को व्याकरणिक कोटियों की संज्ञा दी जा सकती है। उदाहरणार्थ- मैं हूँ, तुम हो, वे हैं अथवा मैं था, मैं थी, वे थे, वे थीं, आदि में जो व्याकरणिक रूप है, वह पुरूष-वचन-लिंग का बोधक है। इसी प्रकार चलूँ, चलें, चले, चलो आदि में जो सम्बन्धत्व है, उससे व्याकरणिक कोटि का ही बोध होता है।

व्याकरणिक कोटियां वह आबद्ध पद है अथवा वह प्रत्यय है जो शब्द में आये हुए दो पदों का व्याकरणिक रिश्त [illegible] प्रकट करते हैं अर्थात् मूल प्रकृति शब्द में लगकर उसके व्याकरणिक अर्थ को बताते है ये व्याकरणिक कोटियाँ निम्नलिखित होती हैं ।

§1§ संज्ञा की व्याकरणिक कोटियां

§क§ लिंग §ख§ वचन §ग§ कारक

§2§ सर्वनाम की व्याकरणिक कोटियाँ

§क§ लिंग §ख§ वचन §ग§ कारक §घ§ पुरूष

§3§ विशेषण की व्याकरणिक कोटियाँ

§क§ लिंग §ख§ वचन

§4§ क्रिया की व्याकरणिक कोटियाँ

§1§ काल

§2§ अर्थ

§3§ अवस्था

§4§ वाच्य

§5§ प्रयोग

§6§ लिंग

§7§ वचन

§8§ पुरुष

दूसरा - अध्याय

भारतीय आर्य भाषा का विकास - व्याकरणिक कोटियों के विशेष सन्दर्भ में

अध्याय - 2

भारतीय आर्य भाषा का विकास - व्याकरणिक कोटियों के विशेष सन्दर्भ में -

भारत-ईरानी शाखा के ही कुछ आर्य भारत आये और उनके कारण भारत में भारतीय आर्य भाषा बोली जाने लगी इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा को भारतीय आर्यभाषा कहते हैं। इन आर्यों के भारतागमन काल के विषय में विद्वानों में मतभेद है लेकिन इतना तो निश्चित है कि 1500 ई0 पू0 के लगभग आर्य भारत देश में आ चुके थे।

विकास की दृष्टि से भारतीय आर्य भाषा को निम्नलिखित सोपानों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(1) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा-1500 ई0पू0 से - 500 ई0पूर्व तक
- (क) वैदिक संस्कृत युग-1500 ई0पू0 से - 1000 ई0 पूर्व तक
- (ख) लौकिक संस्कृत युग - 1000 ई0पू0 से - 500 ई0 पूर्व तक

(2) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा - 500 ई0 पूर्व से 1000 ई0 तक
- (क) पाली - 500 ई0 पूर्व से- 1 ई0 तक
- (ख) प्राकृत - 1 ई0 से 500 ई0 तक
- (ग) अपभ्रंश - 500 से 1000 ई0 तक

(3) आधुनिक भारतीय आर्य भाषा- 1000 ई0 से आज तक।
- (क) आदिकालीन आ0 भा0 आ0 1000 ई0से 1500 ई0 तक
- (ख) मध्यकालीन आ0 भा0 आ0 1500 ई0 से 1800 ई0 तक
- (ग) आधुनिक कालीन आ0 भा0 आ0 1800 ई0 से आज तक

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा- 1500 पू0 से - 500 ई0 पूर्व तक -

आर्य जब भारत में आए, उस समय उनकी भाषा तत्कालीन ईरानी भाषा से कदाचित् बहुत अलग नही थी । किन्तु जैसे-जैसे यहाँ के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव, विशेषत: आर्येतर लोगों से मिश्रण के कारण, पड़ने लगे, भाषा परिवर्तित होने लगी । इस प्रकार वह अपनी भगिनी - भाषा ईरानी से कई बातों में अलग हो गई । भारतीय आर्य भाषा का प्राचीनतम रूप वैदिक संहिताओं में मिलता है। इसमे रूपाधिक्य है, नियमितता की अपेक्षाकृत कमी है और अनेक प्राचीन शब्द हैं जो बाद में नहीं मिलते । वैदिक संहिताओं का काल मोटे रूप में 1200 ई0 पू0 से 900 ई0 पू0 के लगभग है । यों वैदिक संहिताओं की भाषा में भी एकरूपता नहीं है। कुछ की भाषा बहुत पूर्ववर्ती हैं, तो कुछ की परवर्ती । उदाहरणार्थ अकेले ऋग्वेद में ही प्रथम और दसवें मण्डलों की भाषा तो बाद की है, और शेष की पुरानी । यही पुरानी भाषा अपेक्षाकृत अवेस्ता के निकट है । अन्य संहिताएं ‡ यजु:, साम, अथर्व ‡ और बाद कीहै। वैदिक संहिताओं की भाषा तत्कालीन बोल चाल की भाषा से कुछ भिन्न है । क्योंकि यह काव्य-भाषा है इसे छान्दस् या वैदिक मानक भाषा कह सकते है । उस समय तक आर्यो का केन्द्र सप्तसिन्धु या आधुनिक पंजाब था, यद्यपि पूर्व में वे बहुत आगे तक पहुँच गये थे । ब्राह्मणों उपनिषदों की भाषा कुछ अपवादों को छोड़कर संहिताओं के बाद की है। इसमें उतनी जटिलता एवं रूपाधिक्य नहीं है ।

इनके गद्य भाग की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है। इस समय तक आर्यों का केन्द्र मध्यदेश हो चुका था, यद्यपि इधर की भाषा उत्तर पश्चिम या उदीच्या जैसी शुद्ध नहीं थी। इस भाषा का काल 900 से बाद का है। भाषा का और विकसित रूप सूत्रों में मिलता है इसका काल 700 ई0 पू0 से बाद का है। यह संस्कृत पाणिनीय संस्कृत के काफी पास पहुँच गई है, यद्यपि उसमें पाणिनीय संस्कृत की एकरूपता नहीं है। इसी काल के अन्त में लगभग 5वीं सदी में पाणिनि ने अपने व्याकरण में संस्कृत के उदीच्य में प्रयुक्त रूप के अपेक्षाकृत अधिक परिनिष्ठित एवं पण्डितों मे मान्य रूप को नियमबद्ध किया, जो सदा- सर्वदा के लिए लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत का सर्वमान्य आदर्श बन गया। पाणिनि की रचना के बाद बोलचाल की भाषा पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आधुनिक भाषाओं के रूप में विकास करती आज तक आई है, किन्तु संस्कृत में साहित्य-रचना भीइसके समानान्तर ही होती चली आ रही है, जो मूलतः पाणिनीय संस्कृत होने पर भी हर युग की बोलचाल की भाषा का अनेक दृष्टियों से कुछ प्रभाव लिए हुए है और यही कारण है कि बोलचाल की भाषा न होने पर भी, उस साहित्यिक संस्कृत में भी विकास होता आया है।

इस प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के वैदिक और लौकिक संस्कृत दो रूप मिलते हैं।

वैदिक - ﴾ 1500 ई0 पू0 से 1000 ई0 पू0 तक -

इसे "प्राचीन संस्कृत" "वैदिकी " वैदिक संस्कृत या "छान्दस्" आदि अन्य नामों से भी पुकारा जाता है । संस्कृत का यह रूप वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि में मिलता है । यों इन सभी में भाषा का कोई एक सुनिश्चित रूप नहीं है ।

ध्वनियाँ

मूल स्वर - ह्रस्व : अ, इ, उ, ऋ, ऌ = 5

दीर्घ - आ, ई, ऊ, ॠ = 4

संयुक्त स्वर - ए, ओ, ऐ, औ = 4

﴾ अइ ﴿ ﴾अउ﴿ आइ﴿ ﴾आउ﴿ = 13

स्पर्श व्यंजन - कंठ्य - क, ख, ग, घ, ङ

तालव्य - च, छ, ज, झ, ञ

मूर्धन्य - ट, ठ, ड, ढ, ळ, ळ्ह, ण

दन्त्य - त, थ, द, ध, न

ओष्ठ्य - प, फ, ब, भ, म = 27

अन्तस्थ - य, र, ल, व = 4

ऊष्म - श ﴾तालव्य﴿, ष ﴾मूर्धन्य﴿, स ﴾दन्त्य﴿ = 3

महाप्राण - ह = 1

अनुस्वार - ं = 1

अघोष संघर्षी - ꞉ विसर्जनीय या विसर्ग

≍(h) जिह्वामूलीय

≍(h̲) उपध्मानीय = 3

= 52

इस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में कुल मिलाकर 52 ध्वनियाँ है ।

इनध्वनियों में से अधिकांश ध्वनियाँ अभी भी भारतीय आर्य भाषाओं में प्रयुक्त होती है किन्तु कुछ सीमा तक इनका उच्चारण अपने प्राचीन रूप से भिन्न हो गयाहै वैदिक संस्कृत में ए, ओ का उच्चारण संयुक्त स्वरों के रूप में होता था जब कि आज कल इनका उच्चारण मूल स्वरों के समान होता है भारोपीय भाषा की अइ, अउ से इनकाविकास हुआ है, इसलिए वैदिक संस्कृत में इनका उच्चारण अइ, अउ के समान था । वैदिक संस्कृत मे ऐ तथा औ का उच्चारण आइ,आउ के समान होता था क्योंकि इसका विकास भारोपीय भाषा के संयुक्त स्वरों - आइ, आउ से हुआ ।

प्राचीन काल में "कंठ्य" ध्वनियों का स्थान कंठ था किन्तु आजकल में ध्वनियां कोमल तालव्य हो गई हैं । च वर्ग ध्वनियां वैदिक संस्कृत में तालव्य स्पर्श ध्वनियाँ थीं जब कि अब तालव्य स्पर्श- संघर्षी हैं ।

मूर्द्धन्य , ध्वनियों के बारे में कहा जाता है कि इनका विकास द्रविड़ भाषा के प्रभाव से हुआ, किन्तु स्मरणीय है कि कुछ भारोपीय ध्वनियों का विकास स्वतन्त्र रूप से हो रहा था जिसके परिणाम स्वरूप ये ध्वनियां विकसित हुई । ऋग्वेद में मूर्द्धन्य ध्वनियों का बहुत कम प्रयोग हुआ है । शब्द के आदि में तो उनका कहीं भी प्रयोग नहीं हुआ है । ऐसा प्रतीत होता है कि ऋ , र, ष के बाद आने वाली दन्त्य ध्वनियाँ ﴾ त वर्ग ﴿ ही मूर्द्धन्य ध्वनियों में परिणत हो गई । अन्त में आने वाली मूर्द्धन्य ध्वनियों का विकास प्राचीन तालव्य ध्वनियों से हुआ है, जैसे राज् से राट् ।

वैदिक संस्कृत में तीनों ऊष्म ध्वनियां अघोष सघर्षी है। वैदिक संस्कृत में नई स्थितियों में दन्त्य स के स्थान पर तालव्य श और मूर्धन्य ष हो जाते हैं ।

विसर्ग या विसर्जनीय सामान्य ध्वनियों के रूप में थी। क वर्ग ध्वनि के पूर्व आने वाली विसर्ग ध्वनि काउच्चारण जिह्वामूलीय था और प वर्ग ध्वनियों से पूर्व आने वाली विसर्ग ध्वनि का उच्चारण उपध्मानीय था । जिह्वामूलीय का उच्चारण "ख" जैसा था और उपध्मानीय का उच्चारण "फ" जैसा । जिह्वामूलीय अर्थात् जीभ की जड़ से उच्चरित ध्वनि और उपध्मानीय का शब्दार्थ है, मुहं से फूँकी ﴾ ध्मा = फूँकना﴿ गई ध्वनि, यह एक प्रकार के विसर्ग का नाम है ।

स्वराघात वैदिक संस्कृत की एक प्रधान विशेषता है । इसी के अनुसार §1§ उदात्त § प्रधान स्वर युक्त स्वर ध्वनि §, §2§ अनुदात्त § स्वर हीन अक्षर § और §3§ स्वरित § उदात्त स्वर की अव्यवहृत परवर्ती निम्नगामी स्वर ध्वनि एवं उदात्त में उठ कर अनुदात्त स्वर में ढलने वाले अक्षर§ स्वरों की ये तीन कोटियां थीं । स्वर परिवर्तन के कारण अर्थ परिवर्तन हो जाता है एक ही शब्द, 'ब्रह्मन् " आद्युदात्त § ब्रह्मन् § स्वर होने पर नपुंसक लिंग है जिसका अर्थ है प्रार्थना तथा अन्तोदात्त § ब्रह्मन § होने पर पुल्लिंग हो गया जिसका अर्थ हुआ "स्तोता" ।

यहाँ स्वर परिवर्तन के कारण पद की प्रकृति अथवा प्रत्यय या विभक्ति में स्वर परिवर्तन मिलता है । यह प्रक्रिया अपश्रुति §Ablaut § कहलाती है ।

पद या रूप रचना -

वैदिक भाषा में लिंग तीन थे । पुल्लिंग, स्त्रीलिंग , नपुंसकलिंग। वचन भी तीन थे । एक वचन, द्विवचन, बहुवचन । कारक आठ थे । कर्त्ता कर्म, करण , सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सम्बोधन ।

सामान्य कारक विभक्तियाँ या व्याकरणिक कोटियाँ

एक वचन		द्विवचन		बहुवचन	
पु0 स्त्री0	नपुं0	पु0 स्त्री0	नपुं0	पु0 स्त्री0	नपुं0
कर्ता - स्	-म्	-औ	-ई	-अस्	-नि, इ
सम्बोधन-"	-	"	"	"	"
कर्म- अम्	-	"	"	"	"
करण- आ, -एन	-आ, -एन	-भ्याम्	-भ्याम्	भिस्	-भिस्
सम्प्र0 - -ए	-ए	"	"	भ्यस्	-भ्यस्
अपा0 - अस्	-अस्	"	"	"	"
सम्बन्ध - "	"	-ओस्	-ओस्	आम्	आम्
अधि0 - -इ	-इ	"	"	सु	सु

विशेष--

1- आकारान्त शब्दों को छोड़कर अन्य अपने मूल रूप में ही कर्ता एक0 नपुं0 में आते हैं । अकारान्त में - म् लगता है।

2- सम्बोधन के रूप केवल स्वरांत स्त्री0 पु0 एकवचन छोड़कर प्राय: कर्ता के रूपों के समान होते हैं । - मन्, - अन् , -मतं , -वंत, आदि कई स्वरान्त प्रातिपदिक {पु0 एक0} भी अपवाद है।

उपर्युक्त रूपों में अधिकांश मूल भारोपीय - विभक्ति से सीधे आए हैं, और प्रयोग एवं रूप की दृष्टि से उनके समीप हैं। जैसे - स से स § अवे0 श, ग्रो0 स आदि§ , म् से द्वितीया -अम् § ग्रो0 न् , - अ, अवे0 - अम् आदि§, चतुर्थी, अइ, ऐइ से ए §ग्रो0 ओइ § ऐस, ओस्, से अस्, द्विवचन ओ से ओ, बहु0 - अस ओस् से, भास से भ्यस् तथा सु से सु आदि। करण बहु0 -एभि: § देवेभि: § में 'ए' सर्वनामों से आया है।

विशेषणों के रूप भी संज्ञा की तरह ही चलते थे।

मूल भारोपीय में सर्वनाम के मूल या प्रातिपदिक बहुत अधिक थे। विभिन्न बोलियों में कदाचित् विभिन्न मूलों के रूप चलते थे। पहले सभी मूलों से सभी रूप बनते थे, किन्तु बाद में मिश्रण हुआ और अनेक मूलों के अनेक रूप लुप्त हो गए। परिणाम यह हुआ कि मूलत: विभिन्न मूलों से बने रूप एक ही मूल के रूप माने जाने लगे। वैदिक भाषा में उत्तम पुरूष में ही, यद्यपि प्राचीन पंडितों ने "अस्मद्" को सभी रूपों का मूल माना है, यदि ध्यान से देखा जाय तो अह - §अहम्§ , म - § माम् , मया, मम, मयि§, आव § आवम्, आवाम् , वाम्, आवयो: §,वय § वयं §, अस्म §अस्माभि:, अस्मभ्यम्,अस्मे आदि§ , इन पाँच मूलों पर आधारित रूप हैं। मध्यम आदि अन्य सर्वनामों में भी एकाधिक मूल हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वनामों के पीछे अनेक मूल रूपों की परम्परा है। अधिकांश सर्वनामों की परम्परा मूल भारोपीय भाषा तक खोजी गई है। जैसे भारो0 *eghom से अहम् § अवे0 अजेम, लैटिन ego पुरानी चर्च स्लाव अज़ु आदि§,*uei से वयम् § अवे0 वएम् § या *tu से तु § लै0 तू, प्राचीन उच्च जर्मन दु,

प्राचीन आङ्गिरस तू, अवे० तू § आदि । सर्वनामों की कारकीय विभक्तियां प्राय: संज्ञाओं जैसी ही हैं ।

वैदिक भाषा में धातुओं के रूप आत्मने § middle § परस्मै § Active § दो पदों में चलते थे । कुछ धातुएँ आत्मनेपदी, कुछ परस्मैपदी एवं कुछ उभयपदी थीं । आत्मनेपदी रूपों का प्रयोग केवल अपने लिए होता था तथा परस्मै का दूसरों के लिए । क्रियारूप तीन वचनों § एक० द्वि० बहु० § एवं तीनों पुरुषों § उत्तम, मध्यम, अन्य § में होते थे । काल तथा क्रियार्थ मिलाकर क्रिया के कुल 10 प्रकार के रूपों का प्रयोग मिलता है: लट् § Present § लङ् § Imperfect § लिट् § Perfect § लुङ् § Aorist §, लुट् निश्चयार्थ§ Indica--tive § सम्भावनार्थ § Subjunctive, लेट, § , विध्यर्थ§ Inducti--ve§ आदरार्थ आज्ञा थे § Optative § तथा आज्ञार्थ §Imperative लोट्§ । ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में लेट् का प्रयोग बहुत मिलता है, किन्तु धीरे-धीरे इसका प्रयोग कम होता गया और अन्त में लौकिक संस्कृत में पूर्णत: समाप्त हो गया । वैदिक में भविष्य के रूप बहुत कम हैं । इसके स्थान पर प्राय: सम्भावनार्थ या निश्चयार्थ का प्रयोग मिलता है। क्रिया रूपों में तीन विशेषताएं उल्लेखनीय हैं । §1§ कुछ रूपों में धातु के पूर्व भूतकरण आगम अ - या - आ आता था § लङ् लुङ् लृङ् में § । §2§ धातु तथा तिङ् प्रत्ययों के बीच, कुछ धातुओं में विकरण जोड़े जाते थे ।

विकरण के आधार पर धातुओं के दस गण या वर्ग थे। जुहोत्यादि एवं अदादिगण विकरण रहित थे, शेष में निम्नांकित विकरण थे भ्वादि में -अ - दिवादि में -य- स्वादि में - नु, तुदादि में स्वराघातयुक्त - अ -, रूधादि में - न, तनादि में - उ, क्र्यादि में - ना-, तथा चुरादि में - अय - । §3§ इच्छार्थक § § अतिशयार्थक §

§ लट् § कुछ धातुओं में §, लिट्, लुङ् § एक रूप में § द्वित्व का प्रयोग होता है। इसमें महाप्राण के द्वित्व में महाप्राण का अल्पप्राण हो जाताहै § "भी" से "बिभी- §, कंठ्य का वर्ग के क्रमानुसार तालव्य §गुह" से " जुगुह" § हो जाता है, तथा अन्य स्थानों पर प्राय: द्वित्व § बुध्" से बु - बुध § होता है।

पूर्ववर्ती एवं परवर्ती वैदिक भाषा -

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के प्रथम रूप वैदिक के भी दो रूप मिलते हैं। पहला रूप ऋग्वेद के प्रथम एवं दसवें मंडल को छोड़कर अन्य मण्डलों तथा अन्य प्राचीन ऋचाओं आदि की भाषा में है तथा दूसरा उक्त दो मण्डलों में, अन्य वेदों के परवर्ती भागों में, तथा आरण्यकों उपनिषदों आदि में।

वैदिकी के इन दोनों रूपों में प्रमुख अन्तर निम्नांकित है -

ध्वनि -

1- टवर्गीय ध्वनियां पूर्ववर्ती में बहुत कम है पर परवर्ती में उनका

अनुपात बढ़ गया है।

2- पूर्ववर्ती में र् का प्रयोग अधिक है, किन्तु परवर्ती में ल् का प्रयोग भी पर्याप्त है। ऐसे शब्द भी है, जिनमें पूर्ववर्ती वैदिकी में र् ध्वनि है तो परवर्ती में ल् ध्वनि- रोमन् - लोमन, मुच् - म्लुच ।

3- महाप्राणों के स्थान पर "ह" पूर्ववर्ती भाषा में कम मिलता है, किन्तु परवर्ती मे अपेक्षाकृत अधिक है उदाहरणार्थ - प्राचीन वैदिक गृभाण परवर्ती, वैदिक संस्कृत गृहाण । इसी प्रकार पूर्ववर्ती आज्ञार्थ धि (तिङ्. प्रत्यय के स्थान पर परवर्ती में - हि मिलता है।

<u>व्याकरणिक विशेषताएं</u> -,

व्याकरणिक दृष्टि से कई अन्तर हैं । नाम एवं धातु के रूपाधिक्य एवं अपवाद परवर्ती में बहुत कम हो गए हैं, और परवर्ती की भाषा वैदिक को छोड़कर लौकिक संस्कृत की ओर बढ़ती चली आ रही है। पूर्व वैदिकी में देवा: देवैः के अतिरिक्त देवास: देवेभि: रूप भी हैं, किन्तु परवर्ती में देवास:, देवेभि: जैसे रूप अत्यन्त विरल हो गए हैं । "अश्विना" जैसे द्विवचन रूप भी परवर्ती में प्राय: नहीं मिलते । कृणुम : जैसे रूपों के स्थान पर परवर्ती में कुर्म: जैसे रूप मिलते हैं । यह वस्तुत: ध्वन्यात्मक परिवर्तन के कारण हुआ है । "नु" विकरण में न् के लोप के कारण "उ" रह गया है।

<u>लौकिक संस्कृत भाषा</u> - 1000 ई0 पूर्व से - 500 ई0 पूर्व तक -

इसे "लौकिक संस्कृत" तथा "क्लैसिकल संस्कृत" भी कहते हैं। भाषा के अर्थ में "संस्कृत" (संस्कार की गई, शिष्ट या अप्रकृत) शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है। लौकिक संस्कृत का मूल आधार इनमें उत्तरी बोली थी, क्योंकि वही प्रामाणिक मानी जाती थी। पाणिनि ने अन्यों के भी कुछ रूप आदि लिए हैं और उन्हें वैकल्पिक कहा है। इस प्रकार मध्यदेशी तथा पूर्वी का भी संस्कृत पर कुछ प्रभाव है। लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत साहित्यिक भाषा है, अतः जिस प्रकार हिन्दी में जयशंकर प्रसाद की गद्य या पद्य -भाषा को बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते, उसी प्रकार संस्कृत को भी बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार प्रसाद जी की भाषा साहित्यिक मानक खड़ी बोली हिन्दी है, जो बोलचाल की भी भाषा है, उसी प्रकार पाणिनीय संस्कृत भी तत्कालीन पण्डित - समाज की बोलचाल की भाषा पर ही आधारित है। पाणिनि द्वारा उसके लिए "भाषा (भाष् - बोलना) शब्द का प्रयोग, सूत्र "प्रत्यभिवादेड- शूद्रे" दूर से बुलाने में "प्लुत के प्रयोग, सूत्र का उनके द्वारा उल्लेख, बोलचाल के कारण विकसित संस्कृत को व्याकरण की परिधि में बांधने के लिए कात्यायन द्वारा वार्तिकों की रचना, ये बातें यह सिद्ध करती हैं कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा थी। संस्कृत, भारतीय, भाषाओं, (आर्य तथा आर्येतर) की जीवनमूल रही है, साथ ही तिब्बती, अफ़गानिस्तानी, चीनी, जापानी, कोरियाई, सिंहली, बर्मी, तथा पूर्वी द्वीप-समूह की भी अनेकानेक भाषाओं को इसने अनेक-

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा- वैदिक और लौकिक संस्कृत की प्रधान विशेषताएं

ध्वनि -

1- वैदिक संस्कृत में जो ळ , ळह जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ध्वनियां थीं, लौकिक संस्कृत में उनका लोप हो गया और इस प्रकार वैदिक संस्कृत की 52 ध्वनियों में से लौकिक संस्कृत में 48 ध्वनियों शेष रह गईं ।

2- वैदिक में "ऌ " का उच्चारण स्वरवत होता था । संस्कृत में आकर "ऌ" का लिखने में प्रयोग होता रहा किन्तु इसका उच्चारण स्वर रूप में न होकर कदाचित् " लृ रूप में या इसके बहुत समीप होने लगा था ।

3- " ऋ,' 'ॠ' भी उच्चारण में वैदिक के विपरीत शुद्ध स्वर नहीं रह गए थे ये "रि "'री" जैसे उच्चरित होने लगे थे ।

4- ऐ, औ के उच्चारण वैदिक में आइ, आउ थे, किन्तु लौकिक संस्कृत में ये "अइ" अउ हो गए ।

5- ए, ओ का उच्चारण वैदिक में "अइ","अउ" था अर्थात् ये संस्कृत स्वर थे, किन्तु संस्कृत में ये मूल स्वर हो गए ।

6- अनेक शब्दों में जहाँ वैदिक में "र् " का प्रयोग होता था, लौकिक में " ल् " का प्रयोग होने लगा ।

§7§ जिह्वामूलीय एवं उपध्मानीय का ख, फ वाला उच्चारण समाप्त

हो गया , और इनके स्थान पर विसर्ग का सामान्य उच्चारण होने लगा था ।

8- विसर्ग वैदिक काल में अघोष था, किन्तु संस्कृत काल में यह कदाचित्, सामान्य भाषा में अघोष नहीं रह गया था ।

9- वैदिकी में "अनुस्वार" शुद्ध अनुनासिक ध्वनि थी, जिसे कुछ ने व्यंजन तथा कुछ ने स्वर कहा है । लौकिक संस्कृत में अनुस्वार पिछले स्वर से मिलाकर बोला जाने लगा ।

10- जनभाषा के अधिक निकट होने के कारण वैदिक में स्वर भक्ति युक्त रूप - जैसे स्वर्गः - सुवर्गः, स्वः -सुवः, तन्वः - तनुवः - भी मिल जाते हैं, किन्तु सच्चे अर्थों में संस्कार की हुई भाषा होने के कारण प्राप्त संस्कृत साहित्य में स्वर्गः, स्वः, तन्वः ही प्रायः मिलते हैं, स्वर भक्ति वाले रूप नहीं ।

रूप रचना -

1- वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत दोनों में संज्ञा शब्दों के दो विभाग है - §1§ अजन्त अर्थात् स्वरान्त और §2§ हलन्त अर्थात् व्यंजनान्त ।

2- इस भाषा में संज्ञा और विशेषणों के तीन लिंग § पु0, स्त्री, नपुंसक लिंग§ तीन वचन § एक व0, द्वि व0, बहु व0 § तथा आठ कारक है।

3- इस प्रकार प्रा० भा० आर्य भाषा में रूप रचना पर्याप्त जटिल थी । संज्ञा के साथ जुड़ने वाले प्रत्यय " सुप" प्रत्यय कहलाते है और संज्ञा शब्दों को सुबन्त भी कहा जाता है विशेषणों के रूप प्रायः संज्ञा शब्दों के समान ही है। विशेषणों के लिंग, वचन और कारक विशेष के अनुसार ही रहते है ।

4- अकारांत पुल्लिंग के प्रथमा द्विवचन एवं बहुवचन में वैदिक में क्रमशः-औ, - आ तथा - आः - आसः आते हैं, जैसे देवाः, देवासः । लौकिक मे केवल औ तथा- आः आते है जैसे-देवाः ।

5- तृतीय बहुवचन में वैदिक में - ऐः तथा एभिः दो प्रत्यय प्रयुक्त होते है । जैसे रामैः , रामेभिः या देवैः, देवेभिः । लौकिक मे केवल ऐः प्रत्यय प्रयुक्त होता है । जैसे- रामैः देवैः ।

6- षष्ठी बहुवचन में वैदिक में - आम् एवं - आनाम् दो का प्रयोग होता है । लौकिक में प्रायः केवल - आनाम् का प्रयोग होता है।

7- इकारान्त पुल्लिंग में प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में - ई (द्यावापृथिवी) भी होता है। लौकिक में केवल - यौ (यण् + औ) - द्यावापृथिव्यौ होता है।

8- नपुंसक प्रथमा तथा द्वितीय बहुवचन में वैदिक में - आ, -आनि (ता, तानि) दोनों आताहै, लौकिक मे केवल -आनि (तानि) आता है।

9- सर्वनाम उत्तम तथा मध्यम पुरूष सर्वनाम में अस्मे, त्वे, युष्मे त्वा आदि कई रूप ऐसे हैं, जो केवल वैदिक मे है, लौकिक में नहीं हैं।

10- वैदिक में सप्तमी एक वचन में विभक्ति युक्त शब्दों के अतिरिक्त शून्य विभक्ति वाले रूप भी प्रयुक्त होते हैं , जैसे- व्योमिन्, व्योमन् । लौकिक में शून्य विभक्ति वाले रूप नहीं है ।

11- वैदिक में लकारों में विशेष प्रतिबन्ध नहीं है। लुड़्. , लड़्. , लिट् में परोक्षादि का भेद नहीं हैं । यहाँ तक कि कभी-कभी इनका कालेतर प्रयोग भी मिलता है।

12- वैदिक में लुट् के प्रयोग के बारे मे सन्देह है। सम्भव है - तृ प्रत्यांत हो ।

13- वैदिक का लेट् लौकिक में नहीं है, यद्यपि उसके उत्तम पुरूष के तीन रूप लौकिक के लोट् मे आ गए हैं ।

14- लोट् मध्यम पुरूष बहुवचन में लौकिक मे केवल "त" है, किन्तु वैदिक में "त" के अतिरिक्त - तन, थन, तात् भी है।

15- लोट् मध्यमपुरूष एकवचन में, वैदिक में -धि का प्रयोग भी (कृधि = कर, गधि = जा) मिलता है। लौकिक में इनके रूप मात्र कुरू गच्छ है । यों वैदिक - धि का विकसित रूप-हि भी कभी-कभी लौकिक में प्रयुक्त होताहै (जहि = मार डाल; जहाहि = छोड़ दे) यद्यपि इसके प्रयोग विरल हैं ।

16- लट् उत्तम पुरूष बहु0 में लौकिक मे केवल-म: मिलताहै, वैदिक मे - म: के अतिरिक्त - मसि भी मिलता है।

17- वैदिक में लिट् वर्तमान के अर्थ में था, लौकिक में वह परोक्ष भूत के लिए आता है।

18- वैदिक भाषा में समास- रचना सरल थी किन्तु संस्कृत मे लम्बे-लम्बे समास मिलते हैं ।

19- प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में धातुओं में लगने वाले कृत प्रत्ययों और धातुओं से भिन्न शब्दों- (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) मे लगने वाले प्रत्ययोंकी संख्या कई सौ थी । शब्द- निर्माण की इतनी भारी सामर्थ्य के कारण ही संस्कृत बहुत समृद्ध भाषा बन गई ।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा - (500 ई0 पूर्व से 1000 ई0 तक)

भारतीय आर्य- भाषा के इतिहास का मध्यकाल मूलत: प्राकृतों का काल है। भाषा के संस्कृत निष्ठ होने से पूर्व की अवस्था सामान्य बोलचाल की भाषा का है जिसे सामान्यत: प्राकृत कह सकते हैं। किन्तु मध्यकालीन प्राकृतों के संदर्भ में इतना उल्लेखनीय है कि इनका जो रूप उपलब्ध है वह रूप विशुद्ध बोलचाल का नहीं है बल्कि साहित्यिक है।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल में,जन- भाषा पर आधारित, वैदिक एवं लौकिक संस्कृत भाषा के दो रूप, साहित्य में प्रयुक्त हुए। दूसरे रूप- लौकिक संस्कृत - को पाणिनि नेअपने व्याकरण में जकड़कर उसे सदा सर्वदा के लिए एक स्थायी रूप दे दिया, किन्तु जनभाषा भला इसबन्धन को कहाँ मानती ? वह अबाधगति से परिवर्तित हो रही, बढ़ती रही। इस जनभाषा के मध्यकालीन रूप को ही "मध्यकालीन आर्य भाषा" की संज्ञा दी गई है। इसका काल मोटे रूप से 500 ई0पू0 से 1000 ई0 तक का अर्थात् डेढ़ हजार वर्षों का है। कुछ लोग इसे 600 ई0पू0 से 1100 या 1200 तक भी मानते हैं, यद्यपि सभी दृष्टियों से विचार करने पर यह बहुत समीचीन नहीं लगता।

मध्यकालीन आर्य भाषा को प्राकृत भी कहा गया है।

इन 1500 वर्षों की प्राकृत भाषा को तीन कालों में विभाजित किया गयाहै -

(1) प्रथम प्राकृत-पाली(500ई0पू0 से 1 ई0तक)

(2) द्वितीया प्राकृत साहित्यिक प्राकृत 1ई0से 500ई0 तक)

(3) तृतीय प्राकृत- (क) अपभ्रंश- 500ई0 से 1000 ई0 तक)

<u>प्रथम - प्राकृत -</u> इसमें पालि तथा अभिलेखी प्राकृत आती है।

<u>पालि</u> -

पालि बौद्ध धर्म (विशेषतः दक्षिणी बौद्धों) की भाषा है इसे "देश भाषा" भी कहा गया है । मोटे रूप से इसका काल 5वीं सदी ई0पू0 से पहली सदी तक है। यों कुछ लोगोंनेइसका काल छठीसदी ई0 पू0 से दूसरी सदी ई0पू0 तक भी माना है। कुछ इसका आरम्भ 1ली सदी ई0पू0 से भी मानते हैं ।

<u>"पालि नाम -</u>

"पालि" शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद है। पालि शब्द के पुराने प्रयोग "भाषा" के अर्थ में नहीं मिलते । इसका प्राचीनतम प्रयोग 4वीं सदी में लंका में लिखित ग्रन्थ "दीपवंस " में हुआ है । वहाँ इसका अर्थ "बहुवचन" है बाद में प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ने भी इसका प्रयोग लगभग इसी अर्थ में किया है। तब से काफी बाद तक "पालि" शब्द का प्रयोग पालि साहित्य में हुआ है किन्तु कभी भी भाषा के अर्थ में नहीं । भाषा के अर्थ में वहाँ मगध भाषा, मागधी, मागधिक भाषा आदि का प्रयोग हुआ है। सिंहल के लोग इसे अब भी मागधी कहते हैं । भाषा के अर्थ में "पालि" का प्रयोग अत्याधुनिक है और यूरोप के लोगों द्वारा 19वीं शती ई0 पू0 हुआमेंहै। शुरू में अशोक की शिलालेखी प्राकृतों के लिए भी इसका प्रयोग हुआ था, पर बादमें भ्रामक समझकर छोड़ दिया गया। पालि की व्युत्पत्तियाँ

प्रमुखतः दो प्रकार की हैं । एक तो वे हैं, जिनमें "पालि" के प्राचीनतम प्राप्त अर्थ का ध्यान रखा गया है और दूसरी वे हैं, जिनमें अन्य आधार लिए गये हैं । यहाँ संक्षेप में कुछ प्रमुख मतों का उल्लेख किया है । §2§

श्री विधु शेखर भट्टाचार्य के अनुसार " पालि" का सम्बन्ध संस्कृत "पंक्ति" § पन्ति पत्ति पट्टि पल्लि पालि § से है । शुरू में बुद्ध की पंक्तियों के लिए इसका प्रयोग हुआ और बाद मे उसी से विकसित होकर भाषा के अर्थ में । किन्तु "पंक्ति" से " पालि" हो जाना तत्कालीन ध्वनि - परिवर्तन के नियमों के अनुकूल नहीं हैं ।

2- एक मत के अनुसार वैदिक और संस्कृत आदि की तुलना में यह "पल्लि" या "गाँव" की भाषा थी ।"पालि" शब्द " पल्लि" का ही विकास है, अर्थात् इसका अर्थ है "गाँव की भाषा" । "पल्लि" का । "पालि" बन तो सकता है, किन्तु यह प्रवृत्ति पालि काल के बहुत बाद में मिलती है ।

3- एक मत के अनुसार यह सबसे पुरानी प्राकृत है § भण्डारकर तथा वाकरनागल मानते हैं । इसीलिए शायद इसे "प्राकृत" नाम दिया गया और "पालि " शब्द" प्राकृत " §>पाकट>पाअड>पाअल>पालि § का ही विकसित रूप है । यह विकास भी बहुत तर्क -सम्मत नहीं है ।

4- कोसाम्बी नामक बौद्ध विद्वान् के अनुसार इसका सम्बन्ध "पाल्" अर्थात् रक्षा करना से है, इसने बुद्ध के उपदेशों को सुरक्षित रक्खा है इसीलिए यह नाम पड़ा है ।

5- " पा पालेति रक्खतीति'रूप में भी कुछ लोगों ने " पा" में "लि" §क्विप्§ प्रत्यय लगाकर इसकी व्युत्पत्ति दी है । "अत्थान पाति, रक्खतीति तस्मात् पालि" अर्थात् यह अर्थों की रक्षा करती है, अतः पालि है -

6- एक अन्य मत से " प्रालेय"या " प्रालेयक" §पड़ोसी§ से पालि का सम्बन्ध है ।

7- भिक्षु सिद्धार्थ सं0 "पाठ" से बुद्ध पाठ या बुद्ध - वचन§ इसे § पाठ>पाळि> पाळि; पालि में संस्कृत "ठ" का "ळ" हो जाता है । निकाला मानते हैं ।

8- कुछ लोग " पालि" को पंक्ति अर्थ का बोधक एक संस्कृत शब्द मानते हैं । इनके अनुसार यही शब्द पहले बुद्ध की पंक्तियों के लिए फिर उनके उपदेशों के लिए और फिर पुस्तक के लिए और फिर उस भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा ।

9- राजवाडे के अनुसार कुछ लोग पालि का सम्बन्ध संस्कृत प्रकट § पाअड>पाअल > पालि § से भी जोड़ने के पक्ष में हैं ।

10- सबसे प्रामाणिक व्युत्पत्ति भिक्षु जगदीश कश्यप द्वारा दी गई है। प्रायः बहुत से भारतीय विद्वान इससे सहमत हैं । इनके अनुसार " पालि" का सम्बन्ध " परियाय" § सं0 पर्याय§ से है। "धम्म- परियाय" या "परियाय-

का प्रयोग प्राचीन बौद्ध साहित्य में बुद्ध के उपदेश के लिए मिलता है । इसकी विकास- परम्परा परियाय > पलियाय> पालियाय > पालि है।

11- मोग्गलान ने पालिकोश "अभिधानप्पदीपिका " में लिखा है " पाळि रेखा तु राजि च " तथा सेतुस्मिं तन्तिमन्तासु नारियं पाळि उच्यते । सुभूति इन पंक्तियों को व्याख्या करते हुए लिखते हैं " पाळि - पा रक्खणे ळि , पाति रक्खतीति पाळि , पाळीति एकच्चे । अर्थात् जो बुद्धवचनों का पालन करती है या रक्षा करती है उसे पालि कहते हैं ।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को सम्मिलित करके कह सकते है जिस प्राकृत में बुद्ध वचनों या पंक्तियों (उपदेश को पंक्तियां भी) को सुरक्षित रखा गया है उसे पालि कहते हैं ।

'पालि' भाषा का प्रदेश -

यह प्रश्न भी कम विवादास्पद नहीं है कि पालि मूलतः किस प्रदेश की भाषा थी । इस प्रश्न पर प्रायः दो दर्जन विद्वानों ने विचार किया है, जिनमें कुछ प्रमुख मत निम्नांकित है ।

1- श्रीलंका के बौद्धों की यह धारणा है कि यह मगध की बोली थी । इसीलिए वे लोग " पालि" के मागधी भी कहते हैं । पालि ग्रन्थों में मूल

"भाषा" के लिए "मागधी" शब्द का प्रयोग भी इसी ओर संकेत करता है:
सा मागधी मूल भाषा नरा मायादिकप्पिका । इसीलिए डॉ० श्यामसुन्दरदास
तथा चाइल्डर्स आदि कई अन्य विद्वान् इसे मगध की भाषा मानते हैं । किन्तु
भाषा की विवेचना करने पर यह बात अशुद्ध ठहरती है। उदाहरणार्थ यदि
ध्वनियों का विचार किया जाय तो मागधी में प्राचीन, श, ष, स् तीनों के
स्थानों पर "श्" ध्वनि मिलती है, जबकि पालि में "स्" । इसी प्रकार
मागधी में " र् " के लिए भी "ल" ही ध्वनि आती है, जबकि पालि में र और
ल् दोनों है । व्याकरण की दृष्टि से भी इसका मागधी से साम्य नहीं है ।
उदाहरणार्थ पालि में अकरांत शब्दों (पुल्लिंग, नपुंसक) का कर्ता एक वचन में
ओकारांत (धम्मो) होता है, किन्तु मागधी में एकारांत (धम्मे) ।
पालि में - ए वाले रूप हैं, किन्तु बहुत कम । ऐसी स्थिति में पालि को
मगध की भाषा नहीं मान सकते । गाइगर, विंडिश इसे मागधी का ही एक रूप
मानते हैं, यद्यपि इसे पूरे देश की भाषा होने के कारण इसमें अन्य बोलियों
के तत्व भी स्वीकार करते हैं ।

1- वेस्टरगार्ड, ई० कुहन, फ्रैंक तथा स्टैन कोनो पालि को उज्जयिनी
या विंध्यप्रदेश की बोली पर आधारित मानते हैं ।

3- ग्रियर्सन ने इसे मागधी माना था, यद्यपि इस पर पैशाची का भी
प्रभाव स्वीकार किया था ।

4- ओल्डनबर्ग ने खारवेल के खंडगिरि (कलिंग) शिलालेख से पाली की
समानता देख, पालि को कालिंग की भाषा कहा था ।

5- रीज़ डैविड्ज़ ने इसे कोसल की बोली कहा है ।

6- ल्यूडर्ज़, पालि को पुरानी अर्धमागधी से संबद्ध मानते थे ।

7- उपर्युक्त मतों से एक बात स्पष्ट है कि पालि में विभिन्न प्रदेशों कीबोलियों के तत्व हैं, इसी कारण विभिन्न लोगों ने इसे विभिन्न स्थानों से संबद्ध कियाहै। वस्तुतः अपने मूल में पालि मध्य प्रदेश की भाषा है ऊपर कथित सु, र, लु - ओं का उसमें मिलना भी इसी का प्रमाण है। यों उस समय वह पूरे भारत में एक अंतर्प्रांतीय भाषा जैसी थी इसी कारण उसमें अनेक प्रादेशिक बोलियों विशेषतः बुद्ध की अपनी भाषा होने से मागधी के भी कुछ तत्व मिल गये । इस प्रकार अपने मूल रूप में पालि को शौरसेनी प्राकृत का पूर्व रूप मान सकते हैं । पालि कदाचित दक्षिण- पश्चिम से पनपी । अशोकी प्राकृत की दक्षिणी- पश्चिमी बोली से इसका कुछ साम्य है। इस प्रसंग मे यह भी उल्लेख है कि पालि संस्कृत सेकाफी प्रभावित होती रही है।

पालि साहित्य का सम्बन्ध प्रमुखतः भगवान बुद्ध से है । इसमें उन्हीं से संबद्ध काव्य, कथाओं या अन्य साहित्य - विधाओं की रचना प्रमुखतः हुई है । योंकुछ उस विशेष संस्कृति या दर्शन से संबंद्ध पुस्तकें भीलिखी गई हैं, इसी प्रकार कोश, छन्द, शास्त्र या व्याकरण की भी कुछ पुस्तकें लिखी गई है। पालि साहित्य का रचना काल 483 ई0 पू0 से लेकर आधुनिक काल तक लगभग ढाई हजार वर्षों में फैला हुआ है, और इसने एशिया के एक अरब से ऊपर लोगो का प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः कईदृष्टियों से प्रभावितकिया है

पालि की विशेषताएं -

वैदिक काल में प्रचलित उन ध्वनियों, उच्चारण तत्वों एवं रूपों को पालि ने साहित्यिक स्तर पर प्रतिष्ठित किया जिन्हें संस्कृत ने उपेक्षित कर दिया था । मुख-सुख एवं उच्चारण की कठिनाई के कारण कुछ प्रचलित ध्वनियों में परिवर्तन भी घटित हो गये थे । पालि के प्रसिद्ध वैयाकरण कच्चायन के अनुसार पालि में 41 ध्वनियाँ थी - अक्खरापादयो-एकचत्तालीसं " । दूसरे प्रसिद्ध वैयाकरण मोग्गलान के अनुसार 43 ध्वनियाँ थीं - " अआदयो तितालिस वण्णा" । किन्तु वस्तुतः पालि में कुल 47 ध्वनियाँ है : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऍ, ऑ , ए ओ, कवर्ग, टवर्ग तवर्ग, पवर्ग, य यृ, र, ल ,ळ, ळह व, स़, ष़ ,स, ह निग्गहीत ।

1- अर्थात् स्वरों में ह्रस्व ऍ, ऑ इन दो का विकास हो गया । ऐसा बलाघात के कारण हुआ । शब्द में संयुक्त या द्वित्व व्यंजन होने पर बलाघात उस पर चला जाता था, अतः पूर्ववर्ती स्वर ह्रस्व हो जाता था, सं: मैत्री > पा0 मेत्तो, सं0 ओष्ठ>पा0 ओट्ठ ।

2- ऋ, ॠ, ऌ पूर्णतः समाप्त हो गए । ऋ का पालि में प्रायः अ (हृदय- हदय, कृषि - कसि), इ, (ऋण- इण), अथवा उ (पृथिवी - पुथवी) हो गया । कभी- कभी रू (वृक्ष -रूक्ख) या ए आदि अन्य ध्वनियाँ भी हो गई । ऌ का उ (क्लृप्त -कुत्त हो गया ।

3– ऐ, औ भी नहीं रहे । ऐ कहीं तो ए (ऐरावण – एरावण) हो गयी और कहीं ए (मैत्री – मेत्ती)। इसी प्रकार औ का ओ (गौतम –गोतम)अथवा ओ हो गया है। इस तरह कुल स्वर 10 थे ।

4– व्यंजनों में, वैदिक की तरह ही, पालि में भी ळ, ळह ध्वनियाँ थी । यह उल्लेख्य है कि लौकिक संस्कृत के लिखित रूप में ये दोनों नहीं थी ।

5– विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय भी नहीं रहे ।

6– वैदिक तथा संस्कृत में श, ष, स तीन थे । पालि ने तीनों के स्थान मे स हो गया । वैदिक शवशान (श्मशान) – पा0 सुसानः, शय्या– सेय्या:–, निषण्ण – निसिन्न, तृष्णा– तसिणा, साधु – साहु ।

7– अनुस्वार पालि में स्वतंत्र ध्वनि है, जिसे पालि वैयाकरणों ने नि हीत नाम से अभिहित किया है । तुलनात्मक दृष्टि से यह उल्लेख्य है कि वैदिक में कुछ ध्वनियाँ 55, लौकिक संस्कृत में 52, किन्तु पालि में 47 थीं ।

ध्वनि– प्रक्रिया की दृष्टि से पालि में निम्नांकित परिवर्तन उल्लेख हैं –

1– घोषीकरण – स्वर मध्यग अघोष व्यंजन के घोष होने की कुछ प्रवृत्ति है, माकन्दिय > मागन्दिय, उताहो > उदाहु । प् ब् होकर नहीं रुकता अपितु व हो जाता है कपित्थ > कवित्थ । द्, ड् होकर ळ हो जाता है :

स्फटिक > फलिक ।

2- अघोषीकरण - यह प्रवृत्ति अधिक नहीं है । इसका कारण सम्भवतः पैशाची प्रभाव है। मृदंग > मुतिंग , परिघ > परिख, अगुरु > अकलु, कुसीद > कुसीत् छगल > छकल ।

3- महाप्राणीकरण- सुकुमार > सुखमाल, परशु > फरसु , कील > खील, पल > फल ।

4- अल्पप्राणीकरण - भगिनी > बहिणी ।

5- समीकरण - यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है : चत्वर > चच्चर, निम्न > निम्न, सर्व > सब्ब, मार्ग > मग्ग, धर्म > धम्म, कर्म > कम्म, जीर्ण > जिण्ण ।

6- स्वर मध्यम संस्कृत ड् द् का ळ्, ळ्ह्: अपीड > आवेळ , मीढ > मीळ्ह ।

7- र् ल् का आपसी परिवर्तन: र > ल परि > पलि, तरुण > तलुण, ल > र किल > किर । र् का ल् पूर्वी प्रभाव है तो ल् का र् पश्चिमी ।

8- महाप्राण के ह हो जाने की भी कुछ प्रवृत्ति है भवति > होति, लघु > लहु, रुधिर > रुहिर । यह प्रवृत्ति घोष महाप्राणों में ही है ।

<u>व्याकरणिक विशेषताएं -</u>

पालि भाषा, व्याकरणिक दृष्टि से वैदिक संस्कृत की भांति ही स्वच्छंद एवं विविध रूपोंवाली है किन्तु साथ ही वैदिक या संस्कृत की तुलना में उसमें पर्याप्त सरलीकरण भी हुआ है। यह सरलीकरण, उच्चारण में, समीकरण आदि के रूप में तो हुआ ही है, साथ ही सादृश्य के आधार पर विकास के

कारण व्याकरण के क्षेत्र में भी हुआ है ।

1- पालि में शब्द रूपों में सरलीकरण का प्रयत्न द्रष्टव्य है । हलन्त शब्द समाप्त हो जाने के कारण (पालि में हलन्त व्यंजन को छोड़ दिया गया है जैसे भगवान से भगवा । (रूपों के वैविध्य में कमी आ गयी । सभी शब्दों के अजन्त हो जाने के कारण एकरूपता बढ़ गयी । 2- द्वे उभो जैसे दो - एक को छोड़कर पालि में द्विवचन नहीं होता । वचन दोही रह गये एकवचन बहुवचन । 3- लिंग तीन है । यों अपने बहु प्रयोग के कारण पुल्लिंग ने नपुंसकलिंग को प्रभावित किया है : जैसे " सुखं के लिए सुखो । 4- वैदिक की तरह रूपाधिक्य भी पालि में है।उदाहरणार्थ धर्म का सं0 में सप्तमी एक0 में केवल धर्मे होगा किन्तु पालि मे धम्मे के अतिरिक्त धम्मस्मिं तथा धम्मम्हि भी ।

5- विभक्तियाँ 6 है । चतुर्थी और षष्ठी, प्रथमा और सम्बोधन के रूपों में समानता आ गयी है । पालि में विविध विभक्तियों में लगने वाले प्रत्यय इस प्रकार है ।

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पठमा	सि	यो
दुतिया	अं	यो
ततिया	ना	हि
चतुत्थी	स	नं
पञ्चमी	स्मा	हि
छट्ठी	स	नं
सप्तमी	स्मि	सु
आलपन	सि (ग)	यो

इन प्रत्ययों के अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त आदि शब्दों में अलग अलग आदेश (रूपान्तर) हो जाते हैं । जैसे प्रथमा एकवचन के रूप बुद्धो (बुद्धे) इसि, अत्ता आदि ।

6- सर्वनामों में कुछ ऐसे रूप परिवर्तन हुए हैं जिनसे पालि भाषा हिन्दी के नजदीक आती दिखाई देती है। वास्तव में आधुनिक भाषाओं में बहुत से पुराने प्रयोग लोक परम्परा द्वारा यथावत सुरक्षित रखे गये हैं । सब्ब (सब),सब्बे (सभे), को, के, किस्म (किस), मयं (मैं) सो, तुवं, तुम्हें, आदि रूप ऐसे ही हैं।

वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में, सारे के सारे मध्यम पुरूष बहुवचन के रूप य - से शुरू होते हैं, किन्तु पालि में सारे के सारे त - से शुरू होते

हैं । जैसे - युष्मे - तुम्हे, युष्माकम् - तुम्हाकं आदि ।

7- पालि में संस्कृत की तरह विशेषण विशेष्यों के अधीन होते हैं अर्थात् विशेषण के लिंग, वचन विशेष्य के समान होते हैं, जैसे- विसालो मनुस्सो, विसाला नगरी, विसालं फलं ।

8- क्रिया रूपों में भी सरलीकरण की प्रक्रिया दिखाई देती है । क्रिया रूपों में 3 पुरूष तथा 2 वचन (द्वि० नहीं है) है। पद केवल परस्मै है। आत्मने कुछ अपवादों को छोड़कर नहीं है । धातुओं के दसों गण है, यद्यपि संस्कृत की तुलना में कुछ मिश्रण हो गया है। एक ही धातु के कुछ रूप एक, गण के समान हैं तो कुछ दूसरे के । इस प्रकार पता चलता है कि गणों की सत्ता धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी । क्रिया रूपों के प्रत्यय प्रायः पूर्ववर्ती ही हैं केवल उनमें ध्वन्यात्मक परिवर्तन आ गए हैं जैसे- धि का - हि । क्रियार्थ चार (निश्चयार्थ (Indicative) आज्ञार्थ (Imperative) आदरार्थ आज्ञा (optative) तथा (Subjunctive) सम्भावनार्थ) एवं काल चार (लट्, लृङ्, लुट्, लृङ्) हैं । पालि में लिट् (Perfect) नहीं है ।

9- कर्त्ता को प्रेरित करने वाले व्यापार को बताने के लिए प्रेरणार्थक प्रत्यय क्रिया में लगाये जाते हैं । इन प्रत्ययों से निर्मित क्रिया को प्रेरणार्थक क्रिया कहते है ।

पालि में णे, णाये, णापय, आदि प्रेरणार्थक प्रत्यय जोड़े जाते हैं ।

पयोजेति, पाचेति, पाचयति, पाचापेति, पाचापयति आदि प्रेरणार्थक क्रिया के उदाहरण हैं ।

10- संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि से इच्छार्थक, उपमानार्थक, आचारार्थक, क्रियाएं बना ली जाती हैं । ऐसी धातुओं को नामधातु कहते हैं जैसे पुत्रं इच्छति का पुत्रीयति, कुटियं इव आचरति > कुटीयति , सद्दंकरोति सद्दायति ।

11- पालि मे अनेक तद्धित जोड़कर नये नाम शब्द बनाये जाते हैं जैसे वसिट्ठ + ण = वासिट्ठो,

णान प्रत्यय वच्छ + णान = वच्छानो

णिक = वीणा + णिक = वेणिको (वीणा बजाने वाला)

ल = देव + ल = देवल

ता = जन + ता = जनता

इसी तरह के सैकड़ों प्रत्यय कार्यरत दिखाई देते हैं, कृत् प्रत्यय धातुओं के साथ जुड़ते हैं । धातु, वाच्य, व्यापार और फलों को विभिन्न अवस्थाओं को घोतित करने के लिए विभिन्न अर्थ में कृत् प्रत्यय जुड़ते हैं जैसे -

क्तवन्तु (तवन्तु) - हु + क्तवन्तु = हुतवन्तु

क्त = हस + क्त = हसितं

" = गुप + क्त = गुत्तो

तव्व = गम + तव्व = गन्तब्ब

अण = कुम्भ + कर + अण = कुम्भकार । इसी तरह कृत् प्रत्ययों की बड़ी संख्या पालि में है ।

पालि में विभिन्न तत्व -

पालि में अनेक व्याकरणिक एवं ध्वन्यात्मक तत्व मिलते हैं ।

1- इसमें ळ, ळह , कुछ संगीतात्मक स्वराघात, नाम तथा क्रिया रूपों की विविधता (उदाहरणार्थ वैदिक में प्रथमा बहु0 के देवाः, देवासः दो रूप थे । सं0 में केवल "देवाः है किन्तु पालि में देवा, देवासे दोनों हैं, भवामि और उसी का विकसित रूप " होमि" पालि में दोनों हैं (अनेक वैदिक रूपों के समान रूप (नपुं0 प्रथम बहु0 रूपा (रूपानि भी है, जो नियमित है । जो वैदिक युग से प्रभावित है), एवं लेट् (Sub -junctive) सम्भावनार्थ) आदि का होना इसे वैदिक के समीप सिद्ध करता है ।

2- अनेक शब्दों में र् के स्थान पर ल् का हो जाना मागधी जैसा है : सरंड > सलंद ।

3- कुछ में र - ल दोनों है ‡ तरूण > तरूण; तलुण, त्रयोदश > तेरस, तेलस ‡, श एवं ष का स् हो गया है ‡ शिशु > सिसु घोष> घोस ‡, तथा अकरांत पुं0 एवं नपुं0 लिंग के शब्दों का प्रथमा एक0 ओकरांत ‡धम्मो‡ है, ये बातें पालि को मध्य-देशीय प्राकृत या शौरसेनी के निकट ले जाती है।

4- परिघ > पलिघ, कुसीद > कुसीत् अगुरू > अकलु जैसे उदाहरणों में अघोषीकरण की प्रवृत्ति इसमें पैशाची प्राकृत की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करती है। इस तरह पालि में अनेक प्रवृत्तियों एवं तत्वों का मिश्रण है ।

प्राकृत - 1 ई0 से 500 ई0 तक ‖

म0 भा0 आ0 का दूसरा युग प्राकृतों का है । इसके अन्य नाम " देसी "‖ आदि भी मिलते हैं । यों मध्यकालीन आर्य भाषा के सभी रूपों को "प्राकृत" कहते हैं , ।

मध्यकालीन आर्यभाषा के प्रारम्भ में " प्राकृत" शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया गया है। ऐसा अनुमान लगता है कि जन- भाषा का संस्कार करके जब उसे "संस्कृत" संज्ञा से विभूषित किया गया हो, तो जन भाषा, जो उसकी तुलना में असंस्कृत थी, और पण्डितों में प्रचलित इस भाषा के विरुद्ध, जो "प्रकृत" या सामान्य लोगों में बोली जाती थी, सहज ही, " प्राकृत" नाम की अधिकारिणी बन बैठी ।

प्राकृत शब्द के दोअर्थ हैं । पहले अर्थ मे यह 5वीं सदीं ई0 पू0 से 1000 ई0 तक की भाषा है, जिसमें प्रथम प्राकृत में "पालि" और "अभिलेखी प्राकृत " है, द्वितीय प्राकृत में भारत एवं भारत के बाहर प्रयुक्त विभिन्न धार्मिक साहित्यिक और अन्य प्राकृतें हैं तथा तृतीय प्राकृत में अपभ्रंश एवं तथाकथित अवहट्ट आती है।

द्वितीय प्राकृत के लिए भी प्राकृत नाम का प्रयोग होता है। द्वितीय प्राकृत में अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत ‖ पहली सदी‖ , निय प्राकृत ‖ तीसरी सदी ‖ मिश्रित बौद्ध संस्कृत के प्राकृतांश ‖ पहली सदी‖ एवं प्राकृत धम्मपद ‖ दूसरी सदी ‖ की प्राकृत, इन चार को बहुत से लोगों ने

प्रथम एवं द्वितीय प्राकृत के बीच में या सन्धिकालीन प्राकृत कहा है ।

प्राकृतों के भेद -

धर्म, साहित्य, भूगोल (पश्चिमोत्तरी, पूर्वी आदि), लिखने का आधार (शिलालेखी, धातुलेखीआदि) आदि कई आधारों पर प्राकृतों के भेद किए जा सकते हैं, और कुछ आधारो पर किये भी गए हैं ।

धार्मिक दृष्टि से लोगों ने प्राकृत के पालि अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी प्रायः ये चार भेद माने हैं । साहित्यकी दृष्टि से महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, और पैशाची के नाम लिये गये हैं ; नाटक में प्रयोग की दृष्टि से इनमें प्रथम तीन की गणना की गई है। प्राकृत के प्राचीन वैयाकरणो में वररूचि उल्लेख्य हैं । इन्होंने महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी, इन चार का उल्लेख किया है। हेमचन्द्र ने तीन और नाम दिये हैं आर्ष, चूलिका, पैशाची और अपभ्रंश । इनमे "आर्ष" को ही अन्य लोगों ने "अर्ध मागधी" कहा है। कुछ अन्य व्याकरणो तथा अन्य स्त्रोतों से कुछ और प्राकृतों के भी नाम मिलते हैं, जैसे शाकारी, टक्की, शाबरी, चाण्डाली, आभीरिका, अवन्ती, दाक्षिणात्य, भूत भाषा तथागौड़ी आदि। इनमें प्रथम पांच मागधी के ही भौगोलिक या जातीय उपभेद थे । आभीरिका शौरसेनी की जातीय (आभीरों की) रूप थी और अवन्ती या अवन्तिका उज्जैन के पास की कदाचित् महाराष्ट्री से प्रभावित शौरसेनी थी । दाक्षिणात्य भी शौरसेनी का एक रूप है । हेमचन्द्र की चूलिका पैशाची कोही दण्डी ने "भूत भाषा

कहा है। (गलती से "पैशाची" का अर्थ " पिशाच" का या " भूत" का समझकर) कुछ लोगों ने लिखा है कि हेमचन्द्र ने पैशाची को ही चूलिका पैशाची कहा है किन्तु वस्तुतः बात ऐसी नहीं है । हेमचन्द्र ने ये दोनों अलग-अलग दिये है दूसरी पहली की ही एक उपबोली है। गौडी का अर्थ है "गौड़" देश का । इसका आशययह है कि यह मागधी का हीएक नाम है ।

प्राकृतों के साथ "गाथा" का नाम भी लिया जाताहै। गाथा की भाषा, प्राकृतों का संस्कृत से प्रभावित रूप है कुछ लोग एक पश्चिमी प्राकृत की भी कल्पना करते हैं, जो सिन्ध में बोली जाती रही होगी, तथा जिससे ब्राचड अपभ्रंश का विकास हुआ होगा, यह ब्राचड वर्तमान सिन्धी की जननी है। पंजाबी और लहंदा क्षेत्र में भी उस काल में कोई प्राकृत रही होगी , जिसे कुछविद्वानों ने केकय प्राकृत कहा है। टक्क या टाक्की और मद्र या माद्री प्राकृत इसी की शाखाएं थी । राजस्थानी औरगुजराती शौरसेनी से प्रभावित तो हैं, किन्तु उनका आधार नागर अपभ्रंश है वहाँ उस काल में नागर प्राकृत की भी कल्पना कुछ लोगों ने की है । इसी प्रकार पहाड़ी भाषाओं केलिए " खस" अपभ्रंश की कल्पना की गई है। उसका आधार खस प्राकृत हो सकती है । चम्बल और हिमालय के बीच गंगा के किनारे एक पांचाली प्राकृत का भी उल्लेख किया जाता है।

इस प्रकार प्राकृतों के प्रसंग में लगभग दो दर्जन नामों का उल्लेख मिलता है, किन्तु भाषा वैज्ञानिक स्तर पर केवल पांच ही प्रमुख भेद स्वीकार किये जा सकते हैं -

§1§ शौरसेनी §2§ महाराष्ट्री §3§ अर्द्धमागधी §4§ मागधी §5§ पैशाची

शौरसेनी -

यह प्राकृत मूलतः मथुरा या शूरसेन के आस-पास की बोली थी । इसका विकास वहाँ की पालिकालीन स्थानीय बोली से हुआ था। शौरसेनी का व्यवहार मुख्यतः नाटकों मे गद्य भाषा के रूप में हुआ है । मध्य देश की भाषा होने के कारण इसे कुछ लोग संस्कृत की भाँति उस काल की परिनिष्ठित भाषा मानते हैं । मध्य देश संस्कृत का केन्द्र था, इसी कारण शौरसेनी उससे बहुत प्रभावित है यही कारण है कि शौरसेनी संस्कृत के अधिक निकट है ।

शौरसेनी की प्रमुख विशेषताएं -

1- शौरसेनी मे त और थ के स्थान पर क्रमशः द और ध होताहै जैसे गच्छति > गच्छदि, कथय>कधेहि , कहीं - कहीं "त" के स्थान पर " ड" भी मिलता है । जैसे व्यापृत > वावुडो ।

2- दो स्वरों के बीच द् ध ध्वनियाँ प्रायः सुरक्षित है §जलदः > जलदो§

3- क्ष का विकास सामान्यतः क्ख में हुआ है। (इक्षु > इक्खु > कक्षि > कुक्खि § ।

4- ध्र का विकास ड होता है । गृध्र > गिद्ध ।

5- ज्ञ, न्य, ण्य के स्थान पर ञ्ञ होता है । जैसे- ब्रह्मण्य > बम्हञ्ञ ।

6- शौरसेनी में क्रिया रूप परस्मैपदी ही मिलते है, आत्मनेपदी नहीं ।

7- कर्मवाच्य के - य - का - इज्ज -(महाराष्ट्री) नहीं होता अपितु - इअ गम्यते > गमीअदि, क्रियते > करीअदि हो जाता है।

8- रूपों की दृष्टि से यह कुछ बातों में संस्कृत की ओर झुकी है जो मध्य देश में रहने का प्रभाव है, महाराष्ट्री से भी इससे काफी साम्य है।

महाराष्ट्री -

यह प्राकृत श्रेष्ठ तथा परिनिष्ठित प्राकृत मानी जाती है। इस प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है। यह काव्य की, विशेषत: गीति काव्य की भाषा है। गाहा सत्तसई (हाल), रावणवहो (रावरसेन) तथा वज्जालग्ग (जयवल्लभ) इसकी अमर कृतियां हैं। इसमें गीति, खण्ड, और महाकाव्य आदि सभी प्रकार के काव्य लिखे गये। कालिदास, हर्ष, आदि के नाटकों के गीत की भाषा यही हैं। इस भाषा पर अर्धमागधी का भी प्रभाव पड़ा है। कुछ जैनियों और बौद्धों के भी ग्रन्थ इसमें मिलते हैं। जैन ग्रन्थों की भाषा को जैन महाराष्ट्री भी कहते हैं। महाराष्ट्र प्राकृतों में परिनिष्ठित भाषा मानी जाती है।

महाराष्ट्री प्राकृत की प्रमुख विशेषताएं -

1- इसमें दो स्वरों के बीच आने वाले अल्पप्राण स्पर्श (क्, त्, प्, द्, ग् आदि) प्राय: लुप्त हो गये जैसे प्राकृत>पाउअ, गच्छति = गच्छइ।

2- दो स्वरों के बीच आने वाले महाप्राण स्पर्श ख , थ, फ, ध, घ, का केवल "ह" रह गया है । (क्रोध > कोहो , कथयति > कहेइ , मुख > मुह) ।

3- ऊष्म ध्वनियों स, श का प्रायः "ह" हो गया है (तस्य > ताह, पाषाण > पाहाण)

4- कर्मवाच्य - य - (गम्यते) का इज्ज- (गमिज्जइ) बनता है शौरसेनी मे यह -ईअ - था ।

5- पूर्वकालिक क्रिया बनाने में "ऊण" प्रत्यय का प्रयोग होता है । जैसे - (पृष्ट्वा > पुच्छिऊण) ।

6- क्रिया विशेषण "आहि" का प्रयोग अपादान एकवचन में होता है जैसे - दूरात् " के लिए "दूराहि")

7- अधिकरण एक वचन में "म्मि या "ए" लगता है जैसे (लोकस्मिन > लोअम्मि, लोए) ।

8- आत्मन का प्रतिरूप " अप्प" हुआ ।

अर्द्ध मागधी -

अर्ध मागधी का क्षेत्र मागधी और शौरसेनी के बीच में है अर्थात् यह कोसल प्रदेश की भाषा थी । इसमें मागधी की प्रवृत्तियां भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है, इसीलिए इसका नाम अर्धमागधी है। जैनियो ने इसके लिये "आर्ष " आर्षी और "आदि भाषा" का भी प्रयोग किया है ।

इसका प्रयोग प्रमुखतः जैन साहित्य में हुआ है। गद्य और पद्य दोनों ही इसमें लिखे गये हैं । साहित्य दर्पणकार के मत से यह चरों, सेठों और राजपुत्रों की भाषा थी । कुछ विद्वानों के अनुसार अशोक के लेखों की भी यही मूल भाषा थी जिसको स्थानीय रूपों में रूपान्तरित किया गया था । जैनियों द्वारा प्रयुक्त महाराष्ट्री तथा शौरसेनी पर इसका प्रभाव पड़ा ।

अर्धमागधी की प्रमुख विशेषताएं -

1- ष् , श्, के स्थान पर प्रायः स् मिलता है। जैसे श्रावक > सावग, वर्ष > वास ।

2- अर्धमागधी में "र" "ल" दोनों ध्वनियां विद्यमान है ।

3- दन्त्य ध्वनियों द्वारा मूर्धन्य होने की प्रवृत्ति इसमें अधिक है जैसे (स्थित > ठिय, कृत्वा > कुट्टु) ।

4- कहीं-कहीं चवर्ग के स्थान पर तवर्ग मिलता है जैसे-(चिकित्सा-ते इच्छा)

5- स्वर मध्यम स्पर्श के स्थान पर य मिलता है। जैसे (सागर > सायर, स्थित ठिय) आदि ।

6- गद्य और पद्य की भाषा मे अन्तर है प्रथमा एकवचन के अः के स्थान पर प्रायः गद्य मे ए और पद्य मे ओ मिलता है।

मागधी -

इस प्राकृत का मूल आधार मगध के आस-पास की भाषा है । सिंहल

और बौद्ध देशों में पालि को ही मागधी कहते है । पर इस मागधी प्राकृत में इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वररूचि इसे शौरसेनी से निकली मानते हैं । लंका में "पालि" को ही "मागधी' कहते है । मागधी में कोई स्वतन्त्र रचना नहीं मिलती । संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र इसका प्रयोग करते है इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष में मिलता है इसे "गौडी" भी कहते है बाह्लीकी , टक्की, शाबरी, चांडाली इसके जातीय रूप थे । शाकारी इसकी उपबोली थी । इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है ।

1- इसमें स, ष, के स्थान पर "श" मिलता है (सप्त > शत्त, पुरूष > पुलिश)

2- इसे "र" का ल हो जाता है । (राजा >लाजा)

3- "स्थ और "र्थ" के स्थान पर "स्त" मिलता है । (उपस्थित > उवस्तिद, अर्थवती > अस्तवदी) ।

4- कहीं- कही ज का य हो जाताहै। जानाति > याणादि, जायते > यायदें)।

5- प्रथम एकवचन में संस्कृत अः के स्थान पर यहाँ-ए मिलता है (देवः > देवे, सः > शे) ।

पैशाची -

यह प्राचीन प्राकृत है। चीनी तुर्किस्तान के खरोष्ठी शिलालेखों तथा कुवलयमाला में पैशाची की विशेषताए मिलती है । इसकी उत्पत्ति कैकेय

प्रदेश में हुई । पैशाची में साहित्य नही के बराबर है कभी इसमें काफी साहित्य था । गुणाढ्य का वृहत्कथा संग्रह " वृहत्कथा " मूलतः इसी में था । इसके अब केवल दो संस्कृत रूपांतर ही वृहत्कथा मंजरी, कथासरित्सागर शेष है पैशाची के उदाहरण प्राकृत व्याकरणों में मिलते हैं । वररूचि हेमचन्द्र पुरूषोत्तम देव ने पैशाची का उल्लेख किया है । पैशाची की तीन उपभाषाओं- कैकेय, शौरसेनी और पाँचाली का भी उल्लेख मिलता है।

1- दो स्वरों के बीच मे आने वाले सघोष स्पर्श व्यंजन अर्थात्, ग, घ, ज, झ आदि इसमें अघोष अर्थात् क, ख, च छ आदि हो गये है । जैसे नगर > नकर, मेघ > मेखो, राजा > राचा ।

2- र् और ल् का वैकल्पिक सा प्रयोग मिलता है जैसे- कुमार > कुमाल् । ल के स्थान पर ळ भी मिलता है जैसे सलिल > सळिळ ।

3- "ष्" के स्थान पर कहीं तो "श् " और कही "स" मिलता है विषम > बिस्मो, तिष्ठति > चिस्तदि ।

4- अन्य प्राकृतों की तरह स्वरो के बीच में आने वाले स्पर्श इसमे लुप्त नहीं होते । (नगर > नकर)

5- ण् के स्थान पर न् की भी प्रवृत्ति है, गुण गुन , गण>गन

6- रूप रचना में आत्मने पद और परस्मैपद दोनों के प्रत्यय प्रथम पुरूष एकवचन में मिलते है अर्थात् '-ते' और "-ति' दोनों मिलते हैं ।

7- आकारान्त शब्दो में प्रथमा एकवचन विभक्ति रूप का लोप और द्वितीया एकवचन के रूप का विकल्प से लोप मिलता है ।

प्राकृत भाषाओं साहित्यिक प्राकृतों की कुछ सामान्य विशेषताएं -

§1§ ध्वनि की दृष्टि से प्राकृत भाषाएं पालि के पर्याप्त निकट हैं। इनमें भी पालि की तरह ह्रस्व ए और ओ और ळ, ळ्ह का प्रयोग चलता रहा। ऐ, औ, ऋ, लृ का प्रयोग नही हुआ। ऋ का प्रयोग लिखने में तो हुआ, किन्तु भाषा में यह ध्वनि थी नहीं। वे ध्वनि विशेषताएं जो पालि से प्राकृत को अलग करती है इस प्रकार है -

प्राकृत ध्वनियाँ है -

अ आ इ ई उ ऊ ऍ ए ऑ ओ क् ख् ग् घ् ङ्, च् छ् ज् झ् ञ् ट् ठ् ड् ढ् ण् त् थ् द् ध् न् प् फ्, ब् भ्, म्, य्, र् ल् व् श् ष् स् ह् ळ, ळ्ह ह, ड, ढ। देश के बाहर मिलने वाले प्राकृतों मे ज़,ज़ ध्वनियां भी थीं।

कुछ समय के लिए अन्य व्यंजनों के संघर्षी रूप भी थे।

§क§ ऊष्मों में पालि मे केवल "स्" का प्रयोग था। प्राकृत में पश्चिमोत्तरी क्षेत्र मे श् ष्, स् तीनों ही कुछ काल तक थे। बाद में "ष्" ध्वनि "श्" में परिवर्तित होगई। नीय प्राकृत में भी तीनों ऊष्म मिलते है। मागधी मे केवल "श् " है अन्य बहुतों में पालि की तरह प्राय: केवल "स्" §जैसे अर्धमागधी में § मिलता है, और कुछ में श, ष् दोनों ही §पैशाची§।

§ख§ य, र, ल के प्रयोग के सम्बन्ध में भी कुछ विशेषताएं है मागधी में "र" ध्वनि नहीं है। उसके स्थान पर ल् मिलता। कुछ अन्य में कभी-कभी

"र" के स्थान पर "ल्" और कभी "ल्" के स्थान पर "र्" मिलता है। आद्य "य" सामान्यतः "ज" होता देखा जाता है, किन्तु मागधी में "ज" का "य" होना भीपाया जाता है।

(ग) सबसे विचित्र बात है कुछ ऐसे संघर्षी व्यंजनों का प्रयोग जो प्राय: भारतीय भाषाओं में केवल आधुनिक काल में प्रयुक्त माने जाते हैं जैसे "ज" "ग" आदि। नीय प्राकृत में "ज" एवं ज़ ध्वनियाँ है। यद्यपि यह बाहरी प्रभावों के कारण है, किन्तु ऐसा मानने के लिए आधार है कि दूसरी- तीसरी सदी के लगभग प्राकृतों में सामान्य रूप से बहुत से स्पर्शों का स्वरूप कुछ दि- केलिए परिवर्तन के संक्रान्ति काल में संघर्षी हो गया था, यद्यपि इन संघर्षी ध्वनियों के लिए उस काल मे अलग लिपि-चिन्हों का प्रयोग नहीं किया गया। ये स्पर्श घोष (ग़, घ़, द़ आदि) थे।

2- प्राकृतों में "न" का विकास प्राय: "ण" रूप में हुआ है।

3- पालि काल में जिन ध्वनि - परिवर्तन की प्रवृत्तियों (समीकरण लोप, स्वर, भक्ति आदि) का प्रारम्भ हुआ था, इस काल में वे और सक्रिय हो गई। ध्वनि परिवर्तन सबसे अधिक महाराष्ट्री तथा मागधी मे हुए।

4- ध्वनियों के विकास के कुछ विशेष रूप भी इसकाल में दिखाई पड़ते हैं, यद्यपि वेसार्वभौम न होकर प्राय: क्षेत्रीय अधिक हैं -अल्पप्राण स्पर्शों का स्वर मध्यग होने पर लोप, महाप्राण स्पर्शों का स्वर मध्यग होने पर "ह" में परिवर्तन, संस्कृत में विसर्ग के स्थान पर प्राय: ए, ओ, "म" का "व" रूप में परिवर्तन तथा घोष स्पर्शों का अघोष और अघोष का घोष में

परिवर्तन आदि ।

5- प्राकृतों में व्यंजनान्त शब्द प्रायः नहीं हैं ।

6- द्विवचन के रूपों का प्रयोग (संज्ञा, क्रिया आदि में) प्राकृतों में नहीं मिलता । "नीय" प्राकृत अपवाद है, जिसमें कुछ द्विवचन के रूप हैं ।

रूप रचना -

1- व्याकरणिक रूप रचना की दृष्टि से प्राकृत भाषाओं की प्रवृत्ति सरलीकरण की ओर बनी रही ।

2- शब्दों के अन्त्य व्यंजनों का अधिकांशतः लोप हो जाने से व्यंजनान्त रूप भी प्रायः स्वरान्त सदृश हो हो गए और विविध स्वरान्त रूपों में अन्त्य दीर्घ स्वरों के ह्रस्व हो जाने के कारण भी रूपों में कमी हो गई । इस प्रकार पुल्लिंग के आकारान्त, इकारान्त और उकारान्त तथा स्त्रीलिंग के आकारान्त, ईकारान्त और अकारान्त रूप ही शेष रह गये ।

3- नपुंसक लिंग केवल अकारान्त शब्दों तक ही रह गया। अन्यत्र लिंग भी दो ही रह गए हैं ।

4- द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग होने लगा और इस प्रकार दो ही वचन शेष रह गये ।

5- कर्ता- कर्म, सम्प्रदान सम्बन्ध और करण- अपादान के रूपों में समानता आगई इस प्रकार चार विभक्तियाँ शेष रहीं । कारक प्रत्ययों के स्थान पर स्वतन्त्र शब्द भी प्रयुक्त हुए ।

6- प्राकृत में संज्ञा के विभिन्न रूपों में ध्वनि परिवर्तन और सादृश्य के कारण हुई सरलता सर्वनामों में भी मिलती है । सर्वनामों का रूप- विकास प्रायः संज्ञा- रूपों के समान ही रहा, उनमे बहुत अधिक भिन्नता नही मिलती । किन्तु एक-एक सर्वनाम के कई-कई रूप मिलते है जैसे -

	उत्तम पुरूष	मध्यम पुरूष
एकवचन	अहं, हं	तुमं, तं {माहा0}
द्वितीया	मं, ममं {माहा0}	तुमं ते
तृतीया	मए	तुए, तए
पंचमी	ममाओ	तुमाहिंतो{बहुवचन रूप है}
षष्ठी	मम, मे, मह	तुम ः, ते, तव
सप्तमी	मइं	तइ, तुमम्मि

7- बहुवचन में कर्त्ता में -अम्हे, तुम्हे, कर्म में अम्हेयाणों, तुम्हेयाबो, करण में - अम्हेहिं, तुम्हेहि, सम्बन्ध में हम्हाणं या णो, तुम्हाणं आदि मुख्य है ।

8- अन्य पुरूष में - कर्त्ता एकवचन पुल्लिंग मे - सो, नपुसंक लिंग मे - तं, स्त्रीलिंग मे - सा, कर्म एकवचन में-तीनोलिंगो में -तंआदि उल्लेख है। अन्य पुरूष कर्ता और कर्म बहुवचन पुल्लिंग मे - ते, नपुसंक लिंग में ताइं और स्त्रीलिंग में ताओ या ता आदि सर्वनाम रूप मिलते हैं ।

9- संख्यावाचक शब्दों के रूप भी बहुधा संज्ञा रूपों के सदृश ही रहे । संख्यावाचक शब्द "एक" का विकास एक वचन में एक्क, एग रूप में पाया जाता है। शेष का प्रयोग बहुवचन के अनुसार होता है। मूल रूप में दुवे (द्वे), तिण्णि (त्रीणि) चत्तारि (चत्वारि) आदि प्रयुक्त होते हैं।

10- क्रिया- रूपों के अन्तर्गत भी द्विवचन का लोप हो गया । कर्तृवाच्य और कर्म वाच्य में शब्द एकरूप हो गए । आत्मनेपद के रूपों का ह्रास परिलक्षित हुआ । विविध काल रूपों में अनुरूपता आ गई । क्रिया के विभिन्न धातु रूपों में ध्वनि परिवर्तन के कारण समानता के लक्षण प्रकट हुए । संस्कृत के दस गणों के स्थान पर भ्वादि रूप की ही व्यापकता प्राकृतों में मिलती है। संस्कृत के विविध गणों की अपेक्षा प्राकृत में केवल दो गण - अगण (जैसे- इच्छदि, गच्छदि आदि रूप) और एगण (जैसे करेदिया दा धातु के (देदि, देसि, देमि, देन्ति, आदि रूप) के प्रयोग मिलते है । इनमे भी अगण रूप ही व्यापक है। नाम धातुओ तथा कुछ अन्य शब्दों मे एगण रूप मिलता है। परन्तु दोनों गणों में विभक्तियों का प्रयोग प्रायः समान होता है। काल रचना में लट् (वर्तमान) लोट (आज्ञा) विधि लृट (भविष्य) रूप के ही अधिक प्रयोग मिलते है । वर्तमान का प्रयोग सभी कालों और वाच्यों के लिए मिलता है। सहायक क्रियाओं के साथ कृदन्त रूपों का प्रयोग अधिक हुआ । इस प्रकार ध्वनि विकास और सादृश्य के कारण क्रिया पदों के रूप भी अधिक सरल हो गए ।

अपभ्रंश - § 500 से 1000 ई0 तक §

मध्य आर्य भाषा का अन्तिम रूप "अपभ्रंश" के रूप में दिखाई पड़ता है। अपभ्रंश का विकास प्राकृतकालीन बोल चाल की भाषा से हुआ है, और इस रूप में उसे प्राकृत और आधुनिक आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी कहा जा सकता है। अपभ्रंश भाषा-काल लगभग 500 ई0 से 1000ई0 तक माना जाता है। साहित्यिक प्राकृतें जब व्याकरणबद्ध हो गई और बोल-चाल की भाषा कारूप विकसित होकर भिन्नहोता गया तो 500 ई0 के लगभग वह § बोल चाल की भाषा§ एक नवीन रूप में परिलक्षित होन लगी। वह नवीन रूप अपभ्रंश भाषा का स्वरूप था। अपभ्रंश में वे सभी भाषा वैज्ञानिक तत्व परिलक्षित होते हैं जो इसके पूर्व की भाषाओं पालि और साहित्यिक प्राकृतों में है तथा बहुत से नूतन तत्व समाहित मिलते हैं जो परवर्ती भाषाओं की अमूल्य निधि बन गये हैं।

अपभ्रंश शब्द की व्युत्पत्ति अप + भ्रंशु + धञ प्रत्यय से मानी जाती है अप उपसर्ग तथा भ्रंश धातु दोनों का ही प्रयोग अधः पतन, गिरना, विकृत होना के अर्थ में होता है। प्राकृत और अपभ्रंश के ग्रंथो में अवहंस, अवभंस, अवहत्थं, अवहठ, अवहट्ठ आदि शब्दो का व्यवहार हुआ है।

अपभ्रंश शब्द का प्राचीनतम प्रामाणिक प्रयोग पंतजलि §150ई0पू0 के लगभग § के "महा भाष्य"[1] में मिलता है। यों भर्तृहरि §5वीं सदी§ के

1- पंतजलि कहते हैं "भूयांसऽपशब्द अल्पीयांस: शब्दा: एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशा:।

"वाक्यपदीय" §काण्ड 1, कारिका 148 कावार्तिक§ से पता चलता है कि "व्याडि" नाम के संग्रहकार ने भी अपभ्रंश शब्द का प्रयोग किया था। एक "व्याडि" का उल्लेख महाभाष्यकार § कीलहार्न संस्करण भाग 1, पृष्ठ 6§ ने भी किया है। इसका आशय है कि ये "व्याडि" महाभाष्यकार पंतजलि से पहले हुए थे। ऐसी स्थिति में यदि वाक्यपदीय" और 'महाभाष्य' के व्याडि एक हों तो अपभ्रंश शब्द के प्रथम प्रयोग का श्रेय 'व्याडि' को दिया जा सकता है। व्याडि और पतंजलि § एकस्यैव शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः§ में इस शब्द के प्रयोग तो है, किन्तु उनमें इसका अर्थ, "भाषा विशेष" न होकर, तत्सम शब्द का "तद्भव" या "विकृत" रूपहै। आगे भरत §3 री सदी§ ने अपने नाट्य- शास्त्र में इसी अर्थ में "विभ्रष्ट" शब्द का प्रयोग किया। भरत § 17-49-50§ में मागधी, अवन्ती, प्राच्या आदि सात भाषाओं एवं उनकी कई जातीय या स्थानीय बोलियों का उल्लेख किया है, किन्तु इनमें अपभ्रंश का नाम नहीं है, आभीर भाषा को उन्होंने विभाषा अवश्य कहा है। भरत ने उकार बहुला भाषा का क्षेत्र हिमवत्, सिन्धु, सौवीर निर्दिष्ट किया। नाट्यशास्त्र में उद्धृत "मोरूल्लउ नच्चंतउ। महागमे संभत्तउ।। मेहउ हर्त मेई जोण्हउ। णिच्च, णिप्पहे एहु चंदहु।। आदि पंक्तियों में अपभ्रंश कीकतिपय विशेषताओं को दृष्टिगत किया जा सकताहै। इससे सिद्ध होताहै किभरत के समय में अपभ्रंश बोली प्रचलित थी। कालिदास रचित "विक्रमोर्वशीयं" के चौथे अंक में प्रयुक्त अपभ्रंश छन्दों से भी स्पष्ट होताहै कि यह भाषा बहुत पहले से अस्तित्व मे थी। इसकी प्राचीनता को घोषित करने वाले अन्य अनेक प्रमाण भी उपलब्ध है।

धरसेन द्वितीय ने अपने पिता गुहसेन की प्रशस्ति में लिखा है कि वे संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश की काव्य रचना में निपुण थे । वसुदेव हिंडी (589ई0) में भी विद्वानों ने अपभ्रंश के पुराने रूप का संधान किया है। धीरे-धीरे अपभ्रंश का निजी भाषिक संस्कार निर्मित हो रहा था उसकी वाचकता संस्कृत की तुलनामें अत्यधिक लोक प्रचलन के कारण सबल हो रही थी, ईसा की छठी शताब्दी तक संस्कृत और प्राकृत (साहि0 प्राकृतों, पालि) से अलग अपभ्रंश ने काव्य में अपनी स्वतन्त्र सत्ता एवं महत्ता कायम कर दी । भामह अपने "काव्यलंकार" मे इसी तथ्य की गवाही देते हैं ।

शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्विधा: ।

संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा ।।

सातवीं शताब्दी के रचनाकार दण्डी ने भरत के द्वारा निर्दिष्ट आभीर विभाषा की काव्यात्मक प्रतिष्ठा का उल्लेख इन शब्दों में किया है-

"आभीरादि गिर; काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृता: ।

उद्योतन सूरि ने अपने कुवलयमाला में संस्कृत प्राकृत के साथ अपभ्रंश को भी साहित्यिक भाषा बताया है। राजशेखर(10वीं शताब्दी) के द्वारा कल्पित काव्य पुरूष का अपभ्रंश जघन माना गया है। उन्होंने राजसभा में अपभ्रंश कवियों के पश्चिम में बैठने की व्यवस्था का उल्लेख किया है।

समय -

अपभ्रंश का काल मोटे रूप से 500ई0 से 1000 ई0 तक है । यों

कुछ लोगों ने 600 से 1100 तक या कभी- कभी 1200 तक भी इसका समय माना है । कुछ दूसरों ने और आगे बढ़कर 7वीं सदी से 13 वीं तक भी इसे माना है। डॉ० सुकुमार सेन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ (A Comparative Grammar of Middle Indo-Aryan) के नए संस्करण में अपभ्रंश का काल 1 ई० से 600 ई० माना है । ऐसी स्थिति में इसके काल निर्धारित की समस्या भी विचारणीय है ।

भाषा के अर्थ में "अपभ्रंश " शब्द का प्रथम प्रयोग "चण्ड" का (प्राकृत लक्षणम् 3, 37) माना जाता है । इनका काल लगभग छठी सदी है । जिस रूप में चण्ड ने इसका प्रयोग किया है (न लोपोऽभ्रंश थी रेफस्य), उससे यह अनुमान लगता है कि उस काल तक भाषा के रूप में " अपभ्रंश नाम पर्याप्त प्रचलन पा चुका था । भामह ने इसी सदी में "अपभ्रंश" को संस्कृत और प्राकृत के साथ एक काव्योपयोगी भाषा कहा (संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा - काव्यालंकार 1, 16, 28) । वलभी के राजा द्वितीय धरसेन के इसी सदी मे एक ताम्रलेख में " संस्कृतप्राकृतापभ्रंश - भाषात्रयप्रतिबद्धप्रबन्ध रचना निपुणान्तः - करण:" में भी इसका नाम आता है। इनसे भी उसी बात का संकेत मिलता है । इसका आशय यह हुआ कि मोटे रूप से 500ई० के बहुत बाद अपभ्रंश का जन्म नहीं माना जा सकता, क्योंकि छठी सदी में वह स्वीकृत काव्यभाषा बन चुकी थी । और भाषा जन्म से ही काव्यभाषा नहीं बन जाती । जन्म के बाद काव्य- भाषा स्वीकृत होने में सौ- पचास साल लग ही जाते हैं । ऐसी स्थिति में डॉ० उदयनारायण तिवारी (हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, रा सं०,

पृ0 60)द्वारा दिया गया (600 ई0) या डॉ0 नामवरसिंह द्वारा (हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, 1961, पृ0 28) उल्लिखित (सातवीं सदी) समय स्वीकार नहीं किये जा सकते। इन लोगों की मान्यताएं उपर्युक्त उद्धरणों के साथ मेल नहीं खाती। दूसरा प्रश्न यह है कि क्या 500 ई0 से बहुत पहले अपभ्रंश का जन्म माना जा सकता है, जैसा कि डॉ0 सेन ने किया है। इस सम्बन्ध में दो बातें कही जा सकती है। एक तो यह कि ऊपर के वलभी नरेश या भामह के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि संस्कृत और प्राकृत के बाद ही अपभ्रंश का क्रम आता था। साहित्यिक प्राकृतों का जन्म पहली सदी के आस पास हुआ तथा उनका साहित्य में प्रयोग दूसरी सदी के लगभग से माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त साहित्य की दृष्टि से अपभ्रंश अंशो का प्रथम दर्शन कालिदास के विक्रमोर्वशीय में होता है। इसे याकोबी तथा सं0 प0 पण्डित अप्रामाणिक मानते हैं। किन्तु डा0 उपाध्ये एवं डॉ0 तगोर आदि प्रामाणिक मानते हैं। यदि अप्रमाणिक माने तो इन अपभ्रंश - अंशो का काल और इधर खिसक आता है और प्रामाणिक मानने पर भी पहली सदी के पास इसका रचनाकाल नही पहुँचता। इस प्रकार पहली दूसरी सदी के निकट की कोई अपभ्रंश रचना नहीं मिली है। ये दोनों बातें पहली सदी या उसके आस-पास अपभ्रंश का जन्म मानने में बाधक सिद्ध होती है। अतः सभी बातों का ध्यान रखते हुए अपभ्रंश का जन्म 500 ई0 के आस पास मानना ही अधिक समीचीन ज्ञात होता है। जहाँ अपभ्रंश की उत्तर सीमा का प्रश्न है उसे मोटे रूप से 1000 ई0 के पास ही मानना होगा। भाषा जन्मते ही साहित्य में प्रयुक्त नहीं होती। उसे मान्यता मिलने में समय लग

जाता है और पुरानी हिन्दी की अब तक प्राप्त प्राचीनतम प्रामाणिक रचना 11 वीं सदी की राउलवेल (रोडा कृत) है ऐसी स्थिति में हिन्दी का जन्म 1000 के आसपास ही माना जा सकता है, उसके बहुत बाद नहीं। लगभग सभी आधुनिक आर्य भाषाओं की यही स्थिति है। निष्कर्षतः अपभ्रंश काकाल लगभग 500 से 1000 तक ही मानना उचित है ।

अपभ्रंश के भेद -

अपभ्रंश के व्यापक प्रचार प्रसार होने के कारण अनेक क्षेत्रीय भेदों और उपभेदों का होना स्वाभाविक है। रूद्रट ने देश विशेष से अपभ्रंश के अनेक भेदों की ओर संकेत किया। उद्योतन सूरि ने देशी भाषा अपभ्रंश की अठारह विभाषाओं का उदाहरण सहित उल्लेख किया है। प्राकृतानुशासन के लेखक पुरूषोत्तम ,प्राकृत कल्पवृक्ष के लेखक राम शर्मा तर्कवागीश ने भी क्षेत्रीय आधार पर अनेक भेदों-उपभेदों का विवेचन किया है। मार्कण्डेय कुल भेदों की संख्या 27 मानते है। ब्राचड, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर, बार्बर, आवन्त्य, मागध, पांचाल, टक्क, मालव, कैकेय, गौड़ , औद्र , वैवपाश्चात्य, पान्ड्य, कौन्तल, सैंहल, कलिंग ,प्राच्य, कार्णाट, काञ्चय, द्राविड़ गौर्जर, आभीर, मध्य देशीय, और बैताल । वैयाकरणों द्वारा अपभ्रंश के मुख्यतः तीन भेद स्वीकार किये गये - 1- नागर 2- उपनागर 3-ब्राचड

1- नागर -

यह गुजरात की अपभ्रंश थी । इसकी व्युत्पत्ति नागर ब्राह्मणों तथा नगर से मानी जाती है। यह शिष्ट भाषाथी । अपभ्रंश का अधिकांश

साहित्य नागर अपभ्रंश में ही लिखा गया ।

2- उपनागर -

यह राजस्थान की अपभ्रंश थी । इसका स्वरूप नागर और ब्राचड के सम्मिश्रण से तैयार हुआ है । इसके अन्तर्गत पुरूषोत्तम ने वैदर्भी, लाटी, औड्री, कैकेयी, गौड़ी, वर्वरी, कौंतल, पांड्य, तथा सिंहली का उल्लेख किया है, इनमें कैकयी में प्रतिध्वन्यात्मक शब्द, औड्री मे इ, ओ के अधिक प्रयोग लाटी में सम्बोधन के रूपों का आधिक्य, तथा वैदर्भी में उल्ल प्रत्यय युक्त शब्दो के आधिक्य का उल्लेख है। टक्की, को हरिश्चन्द्र ने अपभ्रंश के अन्तर्गत रखा है , यद्यपि पुरूषोत्तम इसे प्राकृत मानते हैं ।

ब्राचड -

पुरूषोत्तम के प्राकृतानुशासन के अनुसार इसमे ष, स, का स, त, थ का अस्पष्ट उच्चारण, तथा चवर्ग का तालव्यीकरण हो गया था। इसका स्थान सिंध के आस-पास था ।

सनत्कुमार चरिउ की भूमिका मे याकोबी ने उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी अपभ्रंश के चार भेदों का उल्लेख किया है।डा० तगोर ने उत्तरी भेद कोमान्यता नहीं दी । उन्होंने केवल तीन ही भेदों का निर्देश किया ।

1- पूर्वी अपभ्रंश -

इस भेद की परिकल्पना सरह, कण्ह आदि बौद्ध सिद्धों के दोहा कोशों की भाषा के आधार पर की गयी है। सरहपा औरकण्हपा के दोहे इस

में है ।

इसकी प्रमुख विशेषताएं है ।

1- क्ष > ख, क्ख (क्षण > खण, अक्षर > अक्खर) ।

2- द > ब (वेद > बेअ) ।

3- श सुरक्षित है, तथा स, ष दोनों ही श हो गये हैं ।

4- पूर्वकालिक तथा क्रियार्थक संज्ञा के प्रत्ययों में सम्मिश्रण नहीं हुआ है ।

5- द्व का रूपान्तर दु मे मिलता है जैसे द्वार > दुआर ।

6- प्रारम्भ में महाप्राण प्राय: नहीं है।

7- अनेक संज्ञाएं बिना विभक्ति के प्रयुक्त हुई है।

8- लिंग का बन्धन कम हो गया है।

9- क्रियार्थक संज्ञा-इब से बनती थी, न कि पश्चिमी की तरह- अण से ।

2- <u>दक्षिणी अपभ्रंश</u> -

डा तगारे मानते है कि इसका सम्बन्ध महाराष्ट्री क्षेत्र से था । दक्षिणी अपभ्रंश की अवधारणा, महापुराण, जसहर चरिउ, णायकुमार चरिउ और कनकामर करकंडचरिउ आदि रचनाओं की काव्य भाषा परआधारित है । डॉ0 नामवर तथा आधुनिक विद्वानों ने दक्षिणी अपभ्रंश को विशेष भेद नहीं मानते हैं इसलिए अपभ्रंश के प्रमुखत: दो ही भेद है -1- पूर्वी अपभ्रंश 2- पश्चिमी अपभ्रंश ।

इसकी प्रमुख विशेषताएं है -

1- अन्य अपभ्रंशो से ष् का ख् या क्ख् हो जाता है किन्तु इसमे ष् है।

2- अकारान्त पुल्लिंग का एकवचन तृतीया पश्चिमी मे - एं होता है किन्तु इसमें एण । अर्थात् इसमें इस दृष्टि से विकास कम हुआ है।

3- वर्तमान (उत्तम पुरूष एकवचन) में भीवही प्राचीनता दृष्टिगत होती है: पश्चिमी में -उँ जबकि इसमें -मि । अन्य पुरूष बहुवचन में - न्ति (पश्चिमी में -हि) ।

बहुत से लोग दक्षिणी अपभ्रंश का साहित्य में अस्तित्व नहीं मानते ।

3- पश्चिमी अपभ्रंश -

यह शौरसेनी प्राकृत का वह परवर्ती रूप है जो गुजरात और राजस्थान की बोलियों से मिश्रित हो गया है। इसी अपभ्रंश का प्राचीनतम रूपकालिदास के विक्रमोर्वशीयम् में दृष्टिगत होता है । अपभ्रंश की अधिकांश रचनाएँ - भविष्यदत्तकहा, परमात्म प्रकाश, योगसार, पाहुड़ दोहा, सावयधम्म दोहाआदि पश्चिमी अपभ्रंश में ही रची गयी है । यही पश्चिमी अपभ्रंश ही मानक अपभ्रंश कही जा सकती है।

अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएं

ध्वनिगत विशेषता -

इसमे निम्नांकित ध्वनियाँ थी, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, एं, ए,

ऑ, ओ, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, , य, र, ल व, स, ह, ळ, ळह, म्ह, न्ह ण्ह, तह, रह, ड़ , ढ़ । ऍ, ऑ के लिए स्वतन्त्र चिन्ह न होने से, इनके लिए प्रायः इ.उ का व्यवहार होता था । "अ" का पूर्वी तथा पश्चिमी अपभ्रंशों में संवृत्त -विवृत का भेद था। ऋ का लिखने में प्रयोग था, किन्तु उसका उच्चारण रि होता था । श का प्रचार केवल मागधी (सम्भवतः पूर्वी मागधी) मे था । ळ महाराष्ट्री मे तो था ही, साथ ही उड़ीसा मे बोली जाने वाली मागधी अपभ्रंश एवं गुजरात, राजस्थान, बाँगड़ू, पहाड़ी में बोली जाने वाली शौरसेनी में भी था । इन क्षेत्रों में अब भी यह ध्वनि है । ळह भी कहीं- कहीं था। म्ह आदि महाप्राण थे ।

2- स्वरों का अनुनासिक रूप (ऋ का नहीं) प्रयुक्त होने लगा था।

3- संगीतात्मक स्वराघात समाप्त हो चुका था। बलात्मक स्वराघात विकसित हो चुका था।

4- अपभ्रंश एक उकार - बहुला भाषा थी । यों तो "ललितविस्तर" तथा " प्राकृत धम्मपद " आदि ग्रन्थों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।, किन्तु वहाँ यह प्रवृत्ति अपने बीज रूप में है। अपभ्रंश मे यह बहुत अधिक है, जहाँ से यह ब्रजभाषा या अवधी आदि को मिली है (जैसे- एक्कु, कारणु, पियासु, अंगु, मूल और जगु आदि) ।

5- ध्वनि परिवर्तन की दृष्टि से जो प्रवृत्तियाँ (लोप, आगम, विपर्यय आदि) पालि में शुरू होकर प्राकृत में विकसित हुई थी, उन्हीं का

यहाँ आकर और विकास हो गया ।

6- अन्त्यस्वर का यह ह्रस्वीकरण या कभी-कभी लोप स्वराघात के कारण है। जिस अन्तिम स्वर पर स्वराघात होगा, उसका लोप या ह्रस्व रूप नहीं होता, किन्तु जिस परस्वराघात नहीं होता, उस पर बल कम होता जाता है । इस प्रकार उसका रूप ह्रस्व हो जाता है या, और आगे बढ़कर वह समाप्त भी हो जाता है § सं० गर्भिणी, प्रा० गब्भिणी, अप० गब्भिणि सं० कीटक प्रा० कीडअ अप० कीड§ । इन शब्दों में प्राकृत की तुलना में ह्रस्व या लोप दिखाई पड़ता है। संस्कृत की तुलना में तो यह प्रवृत्ति अपभ्रंश में और भी मिलती है जैसे हरीडड §हरीतकी§ संझ §सन्ध्या§ वरआत्त § वरयात्रा§ आदि ।

7- अपभ्रंश में स्वराघात प्रायः आद्यक्षर पर था, इसीलिए आद्यक्षर तथा उसका स्वर यहाँ प्रायः सुरक्षित मिलता है। जैसे माणिक्य- माणिक्क, घोटक - घोडअ, या घोड़ा आदि § संस्कृत की तुलना में § । प्राकृत की तुलना में छाहा§ सं० छाया§ से छाआ, आमलअ §सं० आमलक§ से आँवलअ आदिहैं ।

8- म का वं § प्रा० आमलअ, अप० आवँलअ , कमल-कवँल § व का ब § वचन - बअण§; ष्ण का न्ह § कृष्ण-कान्ह§, क्ष का क्ख या च्छ §पक्षी पक्खी, पच्छी§; स्म का म्ह §अस्मै- अम्ह§, य का ज §युगल -जुगल § ड, द, न, र के स्थान पर "ल" §प्रदीप्त- पलित्त आदि§ आदि रूप में ध्वनि-विकास की बहुत सी प्रवृत्तियाँ मिलती है ।

9- ﴾ विशेषत: परवर्ती अपभ्रंश में ﴿ समीकरण के कारण उत्पन्न द्वित्वता में एक व्यंजन बच गया है और पूर्ववर्ती स्वर में क्षतिपूरक दीर्घीकरण हो गया है ﴾ सं० तस्य, प्रा० तस्स, अप, तासु, कस्य, कासु, कर्म, कम्म, कामु ﴿ ।

10- पालि, प्राकृत में विकास तो हुआ था, किन्तु सब कुछ ले देकर वे संस्कृत की प्रवृत्ति से अलग नहीं थी । अपभ्रंश, पूर्णत: अलग हो गई और वह प्राचीन की अपेक्षा आधुनिक भारतीय भाषाओं की ओर अधिक झुकी है।

11- भाषा में धातु और नाम दोनों रूप कम हो गए । इस प्रकार भाषा अधिक सरल हो गई ।

12- वैदिकी, संस्कृत, पालि तथा प्राकृत संयोगात्मक भाषाएं थी । प्राकृत में वियोगात्मक या अयोगात्मकता, के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे, किन्तु अपभ्रंश में आकर ये लक्षण प्रमुख हो गए, इतने प्रमुख कि संयोगात्मक और वियोगात्मक भाषाओं के सन्धिस्थल पर खड़ी अपभ्रंश भाषा वियोगात्मक की ओर ही अधिक झुकी है ।

<u>व्याकरणिक विशेषताएं</u> -

1- संज्ञा सर्वनाम से कारक के रूप के लिए संयोगात्मक भाषाओं में केवल विभक्तियाँ लगती है, जो जुड़ी होती हैं, किन्तु वियोगात्मक में अलग से शब्द लगाने पड़ते हैं, जो अलग रहते है । हिन्दी में ने, को, में, से आदि ऐसे ही अलग शब्द हैं । प्राकृत में इस तरह के दो - तीन शब्द मिलते हैं । किन्तु अपभ्रंश में बहुत से कारकों के लिए अलग शब्द मिलते है । जैसे करण के लिए सहुँ, तण, सम्प्रदान के लिए केहि, रेसि: अपादान के लिए थिउ,

होन्त, सम्बन्ध के लिए केरअ कर, का और अधिकरण के लिए महँ, मज्झ आदि ।

2- नाम-रूप थे । काल रूपों के बारे में भी यही स्थिति है। संयोगात्मक भाषाओं में तिड़, प्रत्यय के योग सेकाल और क्रियार्थ रचना होती है । वियोगात्मक में, सहायक क्रिया के सहारे कृदन्ती रूपों से ये बातें प्रकट की जाती है । इस प्रकार की वियोगात्मक प्रवृत्तियाँ प्राकृत में अपनी झलक दिखाने लगी थी, किन्तु अब ये बातें बहुत स्पष्ट हो गई। संयुक्त क्रिया का प्रयोग होने लगा । तिङन्त रूप कम रह गए ।

3- नपुंसक लिंग समाप्तप्राय हो गया§ महाराष्ट्रीय एवं दक्षिणी शौरसेनी अपवाद थी ।

4- अकारान्त पुल्लिंग प्रातिपदिकों की प्रमुखता हो गई। अन्य प्रकार के थोड़े-बहुत प्रातिपदिक थे भी तो उन पर इसी के नियम प्रायः लागू होते थे । इस प्रकार इस क्षेत्र में एकरूपता आ गई ।

5- कारकों के रूप बहुत कम हो गए। संस्कृत में एक शब्द के लगभग 24 रूप होते थे, प्राकृत में उनकी संख्या लगभग 12 रह गई थी । अपभ्रंश में लगभग 6 रूप रह गए, दो वचनों और 3 कारकों §1§ कर्त्ता, कर्म, सम्बोधन §2§ करण, अधिकरण, §3§ सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध § के ।

6- स्वार्थिक प्रत्यय - ड का प्रयोग अधिक होने लगा। राजस्थानी आदि मे यही -ड, -ड़ी , ड़िया आदि रूपों में मिलता है।

7- वाक्य में शब्दों के स्थान निश्चित हो गए ।

8- अपभ्रंश के शब्द भण्डार की प्रमुख विशेषताएं हैं -(क) तद्भव शब्दों का अनुपात अपभ्रंश में सर्वाधिक है । (ख) दूसरा स्थान देशज शब्दों का है । क्रियाओं में भी ये शब्द पर्याप्त है। ध्वनि और दृश्य के आधार परबने नये शब्द भी अपभ्रंश में काफ़ी है । (ग) तत्सम शब्द अपभ्रंश के पूर्वार्द्ध -काल में तो बहुत ही कम है, किन्तु उत्तरार्द्ध में उनकी संख्या काफ़ी बढ़ गई है। (घ) इस समय तक बाहर से भारत का पर्याप्त सम्पर्क हो गया था, इसी कारण उत्तरकालीन ठक्कुर(तुर्की तगिन) तीक, तुर्क, तहसील, नौबति, हुद्दादार (फा० ओहदादार) आदि । (ङ) आस्ट्रिक एवं द्रविड़ के अनेक शब्द तो आत्मसात हो कर लिए गए थे ।

अवहट्ट

प्राकृत -अपभ्रंश के रचनाकारों ने अपभ्रंश के लिए अवहंस, अवभंस, अवहत्थ आदि शब्दोंका प्रयोग किया है। ये प्रयोग प्रायः बारहवीं शताब्दी के पूर्व के हैं। बारहवीं शताब्दी के बाद के अपभ्रंश रचनाकारों ने अपनी काव्य भाषा को अवहट्ट कहा है।

कुछ विद्वानों ने उत्तरकालीन अपभ्रंश को "अवहट्ट" नाम से स्वीकार किया है। पहले यह धारणा रही है कि पूर्वी अपभ्रंश का नाम अवहट्ट है। "कीर्तिलता" की भाषाको विद्यापति ने अवहट्ट कहा है। संदेश रासक के लेखक अब्दुल रहमान इनमे प्रमुख हैं। "उक्तिव्यक्ति- प्रकरणम्" में दामोदर पंडित ने कोसल की भाषा को "अपभ्रष्ट कहा है। उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त वर्णरत्नाकर, प्राकृत - पैंगलम् के कुछअंश, पुरातन प्रबन्ध-संग्रह की कतिपय अनुश्रुतियाँ, चर्यापद, नेमिनाथ चौपाई, थूलिभद्दफाग, आदि के आधार पर अवहट्ट की प्रकृति को जाना गया है। कुछ विद्वानों ने महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर की "ज्ञानेश्वरी" और रोडाकृत राउलवेल को भी अवहट्ट के ग्रंथ माना है। अवहट्ट अपभ्रंश और आधुनिक आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी है। अर्थात् अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं की संधि कालीन भाषा है।

अवहट्ट काल सन् 1000 से 1200 ई0 या थोड़ा बाद तक निश्चित किया गया है साहित्य में इसका प्रयोग 14वीं शती तक होता रहा है।

1- अवहट्ट सक्कय पाइयंमि पेसाइयमि- संदेश रासक, 6 ।

अवहट्ट की प्रमुख विशेषताएं -

1- अवहट्ट में वे सभी ध्वनियां थीं, जो अपभ्रंश में थीं । उनके अतिरिक्त ऐ,औ दो नई ध्वनियों का विकास हो गया। ऋ, ष, श, न्ह, म्ह, ल्ह, रह् की स्थिति वही है जो अपभ्रंश मे थी । "ऋ" लिखा तो जाता था, किन्तु बोला "रि" जाता था । ष पूरब मे श और पश्चिम में ख बोला जाता था। तत्सम शब्दों के साथ श का प्रयोग अधिक व्यापक हो गया ड़, ढ़ नयी ध्वनियां आ गईं ।

1- ध्वनि- विकास और आगे बढ़ा जिससे भाषा विशेषतया हिन्दी के निकट आ गई ।

2- जहाँ शब्द में एकाधिक इ / उ पास-पास थे, वहाँ एक स्वर ही रह गया। जैसे- विरहणि > विरहणी, धरती > धरित्री, गोवर> गोउर ।

3- किन्हीं शब्दोंमें अनुनासिक स्वर निरनुनासिक होगया और किन्हीं में निरनुनासिक भी अनुनासिक हो गया । जैसे- हउ > अप० हउँ §मैं§, मइ > अप० मइँ §मैं §

4- स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त्य आ का लोप हो गया; जैसे -आकांख > आकांक्षा, बाग > वल्गा, लाज > लज्जा ।

5- क्षतिपूरक दीर्घीकरण के ढ़ेरों उदाहरण मिलते हैं ;जैसे काम > कम्म §कर्म §, मीत > मित्त §मित्र §, दीसई > दिस्सइ § दृश्यते §, भात > भत्त §भक्त§ पाक > पक्क § पक्व § ।

6- अंत्य - ए, -ओ ह्रस्व होकर - इ, -उ हो गए जैसे- परः > परो > परु, क्षणे > खणे > खणि ।

7- संज्ञा के रूप सरल हो गए। नपुंसकलिंग नही रहा । पुल्लिंग औरस्त्रीलिंग के रूप भी बहुत कुछ एक से हो गए । सभी संज्ञा प्रतिपादिक स्वरांत हो गए और कई कारकों में केवल प्रातिपदिक रूप से काम चलाया जाता है। बहुत से पुल्लिंग शब्दों के अंत में "उ" और स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में "इ" मिलता है ।

8- एह , जेह, तेह जैसे नए सर्वनाम प्रयोग में आने लगे ।

9- संयुक्त क्रिया का प्रयोग होने लगा ।

10- परंपरागत तद्भव शब्दों का बाहुल्य पाया जाताहै तत्सम और विदेशी (अरबी, फारसी) शब्दों का प्रयोग बढ़ता गया है । देशी शब्दों की संख्या भी पर्याप्त थी ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का उद्गम

अपभ्रंश और अवहट्ट काल में विद्वानों, कवियों और वैयाकरणों ने जिस भाषा को देशी भाषा या देसिल बइना कहा है उसी अपभ्रंश कालीन या अवहट्ट कालीन लोक भाषा से आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का उद्गम हुआ । अपभ्रंश या अवहट्ट काल में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न देशी भाषाएं या लोक भाषाएं प्रचलित थी । इन्हीं लोक या जन भाषाओं से दसवीं, ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास भिन्न-भिन्न आधुनिक आर्य भाषाओं का उद्गम हुआ । जिनमें हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, मराठी, बंगला, असमी, उड़िया प्रमुख है इन सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में कुछ ध्वनि सम्बन्धी, व्याकरण सम्बन्धी व्याकरणिक विशेषताएं इन सभी भाषाओं में मिलती है और उन्हें अपभ्रंश सेअलग करती है ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की प्रमुख विशेषताएं -

1- आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में प्रमुखतः वही ध्वनियाँ है जो प्राकृत अपभ्रंश आदि में थी (क)अ, आ, इ ई, उ, ऊ ए, ऐ,ओ,औ इन समान स्वरों के अतिरिक्त आई,आऊ, इआ आदि संयुक्त स्वर भी मिलते है । (ख) ऋ तत्सम शब्दों में लिखा तो जाता है किन्तु इसका उच्चारण रि, रू होता है । (ग) मूर्धन्य व्यंजनों को छोड़ शेष व्यंजन

सामान्य है पश्चिम मे ड और पूर्व में ड़, गा र का प्राधान्य पूर्ण मे प का लोप, पश्चिम में ल -ळ का भेद विचारणीय है। संस्कृत के विसर्ग का लोप, य > ज, व > ब , ष > स प्राय: सब में हैं । ञ का शुद्ध उच्चारण कहीं नहीं रहा, उसके स्थान पर ञ्यँ , ग्यँ और यँ आदि उच्चारण प्रचलित है। §घ§ विदेशी भाषाओं के प्रभाव- स्वरूप आधुनिक भाषाओं में कई नवीन ध्वनियाँ आगई हैं जैसे- क़, ख़, ग़, ज़ फ़ ऑ आदि ।

2- प्राकृत आदि में जहाँ समीकरण के कारण व्यंजन - द्वित्व या दीर्घ व्यंजन § कर्म- कम्म § हो गए थे, आधुनिक काल में "द्वित्व" में केवल एक रह गया, और पूर्ववर्ती स्वर में क्षतिपूरक दीर्घता आ गई §कम्म - §काम , अट्ठ - आठ § ।

3- बलात्मक स्वराघात है। वाक्य के स्तर पर संगीतात्मक भी है ।

4- आधुनिक भाषाओं में अपभ्रंश की तुलना में रूप कम हो गए हैं इस प्रकार भाषा सरल हो गई है। संस्कृत आदि में कारक के तीनों वचनों में लगभग 24 रूप बनते थे । प्राकृत में लगभग 12 हो गए, अपभ्रंश में 6 और आधुनिक भाषाओं मेंकेवल दो तीन या चार रूपहैं। क्रिया के रूपों में भी पर्याप्त कमी हो गई है।

5- संस्कृत में वचन 3 थे । मध्यकालीन आर्य भाषाओं में ही द्विवचन समाप्त हो गया था, और आधुनिक काल में भी केवल दो वचन हैं । अब प्रवृत्ति एकवचन की है।

6- संस्कृत में लिंग तीन थे । मध्ययुगीन भाषाओं में भी स्थिति यही थी । आधुनिक मे सिन्धी, पंजाबी, राजस्थानी तथा हिन्दी में 2 लिंग है ﴾ पुल्लिंग, स्त्रीलिंग ﴿ ।

7- आधुनिक भाषाओं में प्राचीन तथा मध्ययुगीन से शब्द - भण्डार की दृष्टि से सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पश्तो, तुर्की, अरबी, फारसी, पुर्तगाली तथा अंग्रेजी आदि से लगभग 8 - 9 हजार नये विदेशी शब्द आ गए हैं ।

तीसरा - अध्याय

संज्ञा की व्याकरणिक कोटियाँ

तीसरा - अध्याय

संज्ञा

ध्वनि- विज्ञान की दृष्टि से प्राकृत की अनेक विशेषताएं अपभ्रंश में मिलती है । परन्तु रूप-विज्ञान की दृष्टि से उसका अस्तित्व पृथक् हो गया था । अपभ्रंश में विभक्ति - प्रयोग में शिथिलता आ गयी । वह व्यवहिति प्रधान भाषा बनने लगी । राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि " उसने नये सुबन्तों और तिङ्न्तों की सृष्टि की है।" डॉ० तगारे ने ठीक ही लिखा है कि "अपभ्रंश में प्रथमा, षष्ठी और सप्तमी - ये तीन विभक्तियाँ रह गयी ।[1] कर्ता और कर्मकारक एक हो गये, करण और अधिकरण एक हो गये, अपादान और सम्बन्ध एक हो गये, सम्प्रदान और सम्बन्ध एक हो गये । प्राकृत में ही इन विभक्तियों में द्विवचन का अभाव हो गया था- " द्विवचनस्य बहुवचनम् " §8/1/130§ । अपभ्रंश में कर्ता, कर्म और सम्बन्ध विभक्तियों का लोप हो गया । आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की दृष्टि से संस्कृत - प्राकृत से अपभ्रंश का अलगाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

अपभ्रंश और हिन्दी संज्ञा की व्याकरणिक कोटियाँ लिंग, वचन, कारक,

अपभ्रंश में लिंग -

प्रकृति में नर और नारी तत्व की पृथकता ही तद्वाचक शब्दों में लिंग

1- डॉ० तगारे, हि० ग्रै० अ०, पृष्ठ 104.

भेद को, पुल्लिंग औरस्त्रीलिंग को जन्म देती है जो न पुमान् है और न स्त्री है - इस तत्व का प्रतिपादन नपुंसकलिंग करता है क्योंकि प्रकृति में और प्राचीन काल की भावना में पुरूष का प्रभुत्व रहा अतः मूलशब्द पुल्लिंग ही रहा। स्त्रीत्व-बोधन के लिए स्त्रीप्रत्यय की रूप प्रक्रिया का आश्रय लिया गया। जहाँ पुरूष और स्त्री दोनों का सहचरित बोध करना हो वहाँ पुल्लिंग ही शेष रह जाता है और इसी लोकव्यवहार को प्रकट करने के लिए पुमान् स्त्रिया § 1/2/67§ इत्यादि सूत्रों में एक शेष प्रकरण का विधान हुआ। यदि प्राकृतिक लिंग व्यवस्था ही शब्दों में रूपान्तरित होती तो वैदिक भाषा से लेकर अपभ्रंश तक और तदनन्तर हिन्दी जैसी आधुनिक आर्यभाषाओं में लिंग व्यवस्था जटिल न बनती। एक ही स्त्री को बताने के लिए दार, स्त्री और कलत्र या एक ही देवता को बताने के लिए देव, देवता और देवतम् जैसे तीनों लिंगों में शब्द न होते या सुहृद् को बताने वाला मित्र शब्द नपुंसक लिंग न होता। यह अव्यवस्था वैदिककाल से ही थी। पाणिनी को अपने अनेक सूत्रों में लिंग विधान करना पड़ा और अन्त में लिंगानुशासन जैसे प्रकरण की योजना भी करनी पड़ी। इस लिंग विधान में उन्हें जो कष्ट प्रतीत हुआ उसको "तद्शिष्यं संज्ञा प्रमाणत्वात् " 1/2/53 में संज्ञा को प्रामाणिक मान कर अभिव्यक्त किया। संस्कृत लिंगानुशासन में अनेक आधारों को जैसे अंतिम प्रत्यय, अन्त्य वर्ण, वस्तुवाचकता इत्यादि को मानकर कुछ कृत्रिम नियम बनाने का प्रयत्न किया गया है फिर भी अनेक शब्द दो लिंगों में या "अविशिष्ट लिंग" रूप में निर्दिष्ट किये गये।

प्राकृत वैयाकरणों को अपभ्रंश में लिंग सम्बन्धी इतनी अव्यवस्था दिखाई पड़ी कि उन्होंने उसे 'अतंत्र "घोषित किया । पिशेल ने ठीक ही कहा है कि अन्य सभी बोलियों की अपेक्षा अपभ्रंश में लिंग विधान बहुत अस्थिर है । लिंग विधान की यह अव्यवस्था अपभ्रंश काल से बहुत पहले प्रा० भा० आ० से ही शुरू हो गई थी ।

प्राकृत में लिंगविधान अपेक्षाकृत सरल हुआ । नपुंसकलिंग के रूपों में पहले भी केवल प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति में ही भेद था अन्यत्र पुल्लिंगवत् ही रूप रहते थे । व्यंजनान्त शब्द स्वरान्त हो ही गये थे । नकारान्त और सकारान्त न० लि० शब्द पु० लि० में प्रयुक्त होने लगे । कम्मो, वम्मो, जसो, सरो रूप पुं० लि० में आ गये ।[1] अपवाद सिरं = शिरः और णहं = नभः रहे गये ।[2]सम्मिलित परिणाम यही था कि कुछ शब्दरूपों को छोड़कर शेष सब न० लि० शब्द पुं० लि० में आ गये । प्राकृत में ही शब्द रूप प्रायः पुलिंग या स्त्रीलिंग में रह गये, परन्तु अव्यवस्था ही रही । अपभ्रंश में हेमचन्द ने "लिंगमतन्त्रम् 8/4/445 सूत्र लिखकर इस अव्यवस्था को पूरी स्वीकृति दे दी । पुरूषोत्तम , त्रिविक्रम और मार्कण्डेय ने भी इसकी पुष्टि की । खलाइं = खलान् §4/334 में उदाहरण§ या कुम्भइं = कुम्भान् में पुं० लिं० को न० लि०, बड्डा घर = वृद्धानि § महान्ति§ गृहाणि में या अब्भा= अभ्राणि में न० पुं० को पुं० लि०, डालइं = §डाला§ शाखाः में स्त्री ० लिंग को पुं० लि० इस अतन्त्रता के उदाहरण है । इन उदाहरणों में लिंगव्यत्यय का कारण छन्दोभंग

1- प्रा० प्र० 4/18
2- प्रा० प्र० 4/18

का परिहार, मिथ्यासादृश्य, देशी शब्द का प्रयोग, अन्तिम स्वर आदि में ढूँढा जा सकता है। अतः लिंग की अव्यवस्था सर्वथा अनियन्त्रित नहीं समझनी चाहिए । पंडित दामोदर ने बताया कि शब्दों के पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग का भेद लोक से जानना चाहिये । उदाहरणार्थ " मणुसु जेंम = मानुषो जिम्वति (भुंङ्क्ते)। मेहलि सोअ-महेला स्वपिति । नपुंसक जाय - नपुंसकं जायते । " यहाँ आख्यात में किस प्रकार का लिंग भेद नहीं है, पर लोक में तीनों भिन्न भिन्न लिंग के ज्ञात होते हैं ।[1] पिशेल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण ने भी अपने विवेचन में यही सम्मति दी है । वस्तुतः प्राकृत भाषा की तरह ही स्थिति अपभ्रंश में है, प्रत्युत न० लि० के कम प्रयोग से और विभक्तियों के सीमित हो जाने से स्थिति में सुधार ही है । सरलीकरण इस क्षेत्र में भी लागू ही है। अपभ्रंश में प्रायः लिंग का निर्णय शब्द प्रकृति अर्थात् उसकी वर्णान्तता पर निर्भर करने लगा है। आकारान्त, ईकारान्त और ऊकारान्त अर्थात् दीर्घ स्वरान्त शब्द अधिकांशतः स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं । संस्कृत में स्त्री प्रत्यय आ (टाप्) ई (ङीप० और ङीष०) और ऊ (ऊङ्०) स्त्रीत्व का विधान करते थे । वररुचि ने स्त्रीलिंग हलन्त शब्दों को आकारान्त प्रदर्शित किया । अपभ्रंश में कोमलता , लघुता या हीनता को बोधित करने के लिए स्वार्थिक डी प्रत्यय (हेम० 8/4/431) का प्रयोग होता है जैसे गोरडी, अन्तडी, कुडुल्ली इत्यादि । आ० भा० आ० हिन्दी आदि में थाली, झाड़ी, लकड़ी आदि इसी प्रकार के अपभ्रंशों के रूप है । बहू जैसे शब्द स्त्रीलिंग है ।

1- पुं० स्त्री-नपुंसकत्वं शब्दानां लोकतः परिच्छेद्यम् ।

अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त शब्दों में अवश्य लिंगनिर्णय में कठिनाई होती है । प्रा0 भा0 आ0 से म0 भा0 आ0 में यह लिंगविपर्यय की प्रवृत्ति अशोक के शिलालेखों में प्राप्त निगोहानि < न्यग्रोधात्, पनानि < प्राणिनः, लुखानि < रूक्खाः § वृक्षाः § - में स्पष्ट लक्षित है। अपभ्रंश के पुं0 लि0 और न0 लि0 का यह भेद भी केवल प्रथमाऔर द्वितीया बहुवचन में ही लक्षित होता है जहाँ " इं " प्रत्यय होता है । एकवचन में तो पुं0 लि0 की तरह उकार ग्रहण से वे पुं0 लि0 ही बन जाते हैं जैसे फलु, अन्नु आदि । स्त्रीलिंग में दीर्घ का ह्रस्व हो जाने पर भी यही समस्या रहती है । उन्हें वहीं स्त्रीलिंग कहा जा सकता है जहां कोई सर्वनामात्मक विशेषण साथ लगा हो जैसे- भविसयत्तकहा में छन्दोनुरोध से बहुधा प्रयुक्त कह < कथा का विशेषण एह ही उसे स्त्रीलिंग बता सकता है। यो एह < एषा भी ह्रस्व का ही उदाहरण है । कह धम्मणिबद्धी कावि कहमि § ज0 च0 1/5/6 § में णिबद्धी और कावि विशेषणों में प्रयुक्त स्त्रीलिंग कह को स्त्रीलिंग बताता है । कृदन्त शतृ और शानच् से बने अर्थात् - अन्त और-माण प्रत्ययान्त विशेषण लिंगों का पृथकत्त्व बोधित करते हैं जैसे " कावि वर रमणि ... जलपवाह पवहंति " § सं0 रा0 24 § में स्त्रीत्व का । " इमि मुद्दह विलवंतियह" § सं0 रा0 25 § में मुद्दह से लिंग का परिचय नहीं मिलता, पर शत्रन्त विशेषण स्त्रीलिंग को बोधित कर देता है। इसी पद्य में पुं0 लि0 पहिउ § पथिक § के विशेषण छिहंतु और पवहंतु हैं । अन्य कृदन्त के विशेषणों से भी ऐसा ही बोध हो जाता है । शनैः शनैः विशेषणों में भी लिंग भेद समाप्त

होता गया है। भीसण अडइ < भीषणा अटवी में विशेष्य विशेषण दोनों में लिंग का परिचय नहीं मिलता ।

प्रा० भा० आ० में भी कई स्थलों पर किसी शब्द के लिंग की अपेक्षा उसका "अन्त" रूप प्रणाली को प्रभावित करता दिखाई पड़ता है। अपभ्रंश के पद-विन्यास के कारण ही नपुं० लिंग लुप्त हो गया । इ- उकारान्त पुं० और स्त्रीलिंग प्रातिपादकों के अनेक रूप एक समान हैं । इसके सिवा आकारान्त स्त्रीलिंग प्रातिपदिक अकारान्त की भाँति हो गए । फलतः पुल्लिंग रूपों के अपनाने का रास्ता खुल गया ।

1- अपभ्रंश में- आ,-ई, - ऊकारान्त प्रातिपादकों में लिंग संबंधी कोई कठिनाई नहीं है। उनका लिंग प्रा० भा० आ० में चाहे जो रहा हो, परन्तु अपभ्रंश में वे सभी स्त्रीलिंग थे । जैसे- वट्ट < वत्मन् (नपुं०) , अंत्रडी < अन्त्र (नपुं०) ।

2- -आ,-ई - ऊकारान्त तत्सम और तद्भव शब्द स्वभावतः स्त्रीलिंग थे । जैसे- राहा (राधा), रमा (तत्सम) लच्छी (लक्ष्मी) वहू (वधू) । वास्तविक कठिनाई अ-इ उकारान्त प्रतिपदकों के लिंग संबंधी है क्योंकि अन्ती वाले शब्द सभी लिंगो में होते है ।

3- अकारान्त प्रतिपदिकों में से एक रूप इस प्रकार है -

नपुं० कुम्भई = पुं० कुम्भान्।

नपुं० रहइँ = स्त्री रेखा; नपुं० अम्हइँ = उभयलिंग अस्मे ।

|| इस प्रकार अपभ्रंश में लिंग विपर्यय के उदाहरण अनेक हैं ।

हिन्दी संज्ञा

हिन्दी की व्याकरणिक प्रवृत्ति की सबसे प्रमुख विशेषता है - (पुल्लिंग) पदों का आकारान्त उच्चारण ।

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया - कृदन्त मुक्त पदों में यह प्रवृत्ति पायी जाती है ।

संज्ञा - घोड़ा, लड़का, टोकरा, छकड़ा

सर्वनाम - मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा

विशेषण- छोटा, बड़ा, अच्छा, ऊँचा

क्रिया- उठा, बैठा, लिखा, चला

कृदन्त - उठता, बैठता, लिखता, चलता

सार्वनामिक विशेषण - ऐसा, वैसा, जैसा, कैसा, तैसा इतना, जितना, कितना, तितना

क्रिया विशेषण - यहाँ, वहाँ, जहाँ, कहाँ, तहाँ

संज्ञा पद तथा उसकी व्याकरणिक कोटियाँ

किसी व्यक्ति, स्थान तथा पदार्थ के नाम का द्योतक होने वाले पद को संज्ञापद कहा जाता है । मानक हिन्दी के संज्ञापदों को अर्थ की दृष्टि से जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, भाववाचक, पदार्थवाचक और समुदायवाचक आदि वर्गों में करने से मानक हिन्दी की व्याकरणिक रचना में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है। वाक्य में आये हुए अन्य पदों से संज्ञापद का सम्बन्ध प्रकट करने के लिए लिंग-वचन और कारकीय विभक्तियाँ लगाई जाती है । इन्हीं विभक्तियों को संज्ञा की

व्याकरणिक कोटियाँ कहा जाता है संज्ञा को ये व्याकरणिक कोटियाँ मानक हिन्दी की व्याकरणिक प्रकृति की विशेषता को व्यक्त करती है ।

पद, भाषा की लघुतम सार्थक इकाई है। ध्वनि भी भाषा की लघुतम ईकाई है। किन्तु ध्वनि अर्थ-भेदक तत्व से युक्त होने पर भी स्वयं सार्थक नहीं होती है । एक ध्वनि या अनेक ध्वनियों की सार्थक समष्टि पद की संज्ञा प्राप्त करती है । अर्थ भी दो प्रकार का होता है कोशात्मक अर्थ (Dictionary meaning) व्याकरणिक अर्थ (Grammatical meaning)। जो पद कोशात्मक अर्थ से युक्त होताहै और स्वतन्त्ररूप से प्रयुक्त हो सकता है उसे स्वतन्त्र पद की संज्ञा दी जाती है। स्वतन्त्र पद ही शब्द की संज्ञा पाते हैं । संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया ऐसे ही स्वतन्त्र पद (Free morph) है । जिस पद का कोशात्मक अर्थ तो नहीं होता, किन्तु जो व्याकरण की दृष्टि से वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण है, वह व्याकरणिक अर्थ से युक्त कहा जाता है । ऐसे पद का स्वतन्त्र प्रयोग संभव नहीं है। यह पद सदैव किसी न किसी स्वतन्त्र पद से आबद्ध होकर सार्थक बनता है। अतएव ऐसे पद को आबद्ध पद (Bound morph) की संज्ञा दी जाती है। सारे प्रत्यय आबद्ध पद हैं । प्राचीन भारतीय वैयाकरण स्वतन्त्र पद को 'प्रकृति' और आबद्ध पद को प्रत्यय की संज्ञा देते हैं । यही प्रकृति-प्रत्यय प्रक्रिया व्याकरण का मूलाधार है ।

आधुनिक भाषा विज्ञानी पद या रूप को परिभाषित करने में कोशात्मक अर्थ और व्याकरणिक अर्थ दोनों को दृष्टिगत रखते है । सामान्यतया कोशात्मक

अर्थ रखने वाले पद ही सार्थक कहलाते है। किन्तु आधुनिक भाषा विज्ञान में व्याकरणिक महत्ता को भी अर्थसत्ता प्रदान की गई है। भारतीय वैयाकरण आचार्य पाणिनि एक सन्दर्भ में "अष्टाध्यायी" में पद को अर्थवत् -अधातु अप्रत्यय- के रूप में और दूसरे सन्दर्भ में " सुप् तिङ्न्तम पदम् " परिभाषित करते हैं । पाणिनि की इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है, कि पद वह है जिसके अन्त में सुप् (संज्ञा-प्रत्यय) तिङ् (क्रिया- प्रत्यय) प्रत्यय हों । इस परिभाषा से संकेत यही मिलता है कि कोशात्मक दृष्टि से सार्थक ध्वनि समष्टि को ही पाणिनि पद की संज्ञा देते हैं । यह मान लेने पर फिर स्वयं सुप् और तिङ् प्रत्यय को पद की संज्ञा नहीं मिलती । किन्तु आधुनिक भाषा विज्ञान की दृष्टि में सुप् और तिङ् प्रत्यय भी पद या रूप की संज्ञा प्राप्त करते हैं । प्राचीन भारतीय वैयाकरण और आधुनिक भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का यह अन्तर समझ लेना आवश्यक है।

संज्ञा - प्रातिपदिक

पदों के रूपान्तरण में जितना अंश प्रतिपद में आता है, उसे प्रातिपदिक (derivatives) को संज्ञा दी जाती है। जैसे (राम ने, राम को, राम से, में राम संज्ञा प्रातिपदिक (चलेगा, चलता है, चला में चल क्रिया- प्रातिपदक) रूपान्तरण संज्ञा, सर्वनाम- विशेषण, क्रिया, सभी पदों का होता है अतएव प्रातिपदिक भी संज्ञा (सर्वनाम-विशेषण) और क्रिया वर्ग के होते हैं । जिस प्रातिपदिक में केवल एक पद रहता है, उसे मूल प्रातिपदिक तथा जिसमें रचनात्मक या व्युत्पत्ति मूलक प्रत्यय लगे है उसे व्युत्पन्न प्रातिपदिक की संज्ञा दी जाती है ।

प्रत्यय भी दो प्रकार के होते है -﴾1﴿ रचनात्मक या व्युत्पत्ति मूलक प्रत्यय ﴾ derivatives ﴿ जिनसे संज्ञा- क्रिया-प्रातिपदिक का निर्माण होता है । ﴾2﴿ व्याकरणिक या विभक्तिमूलक प्रत्यय ﴾ Inflections ﴿ ऐसे प्रत्यय जो वाक्य में और सभी पदों के पारस्परिक संबंध को व्यक्त करने के लिए लगाए जाते हैं । ये प्रत्ययपद के सबसे अन्त में लगतेहैं । इसीलिए इन्हें चरम प्रत्यय कहा जाता है, व्याकरणिक प्रत्ययों के बाद फिर कोई प्रत्यय नहीं आता है ।

प्रातिपादिक की दृष्टि से भारतीय आर्य भाषाओं का अपना इतिहास है प्राचीन भारतीय आर्य भाषा ﴾ वैदिक और संस्कृत﴿ में प्रातिपदिक स्वरान्त और व्यंजनान्त होते हैं । सामान्तया सभी स्वरों के अन्त होने वाले पद मिलते हैं; जबकि अ-इ-उ मे अन्त होने वाले पदों की प्रमुखता रहती है और इसमें अकारान्त पद ही सर्वाधिक मिलते हैं ।

पाली- प्राकृत- अपभ्रंश में व्यंजनान्त पद लुप्त प्राय हो गए और पद केवल स्वरान्त हो गये । आधुनिक भारतीय आर्य भाषा प्राचीन काल ﴾ 1000 - 1400 ई0﴿ तक तो पद स्वरान्त ही मिलते हैं । प्रधानता अकारान्त या उकारान्त पदों की है । इस युग में हिन्दी पद्य के नमूने ही मिलते है और पद्य का अन्त स्वर में ही होता है व्यंजन में नहीं । बोल-चाल में स्थिति क्या था स्पष्ट नहीं हो पाता । किन्तु अपभ्रंश की प्रवृत्ति को देखते हुए प्रतीत यही होता है, कि सामान्य बोल-चाल मे भी अंतिम "अ" का उच्चारण होता था ।

हिन्दी में लिंग -

वाक्य में संज्ञा पद का रूपान्तर लिंग-वचन और कारक प्रत्यय या व्याकरणिक प्रत्यय लगने से होता है ।

संज्ञा के जिस रूप से वस्तु की (पुरूष व स्त्री) जाति का बोध होता है , उसे लिंग कहते हैं । हिन्दी संज्ञापदो को पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दो वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है/जिस संज्ञा से (यथार्थ वा कल्पित) पुरूषत्व का बोध होता है, उसे पुल्लिंग कहते है । जैसे- लड़का, बैल, पेड़, नगर इत्यादि। इन उदाहरणों में "लड़का" और "बैल" यथार्थ पुरूषत्व सूचित करते हैं और "पेड़" तथा "नगर" से कल्पित पुरूषत्व का बोध होता है, इसलिए ये शब्द पुल्लिंग है।

जिस संज्ञा से (यथार्थ वा कल्पित) स्त्रीत्व का बोध होता है, उसे स्त्रीलिंग कहते है; जैसे- लड़की , गाय, लता, पुरी इत्यादि । इन उदाहरणों में "लड़की" और "गाय" से यथार्थ स्त्रीत्व का और"लता" तथा पुरी में कल्पित स्त्रीत्व का बोध होता है; इसलिए ये शब्द स्त्रीलिंग हैं। अतएव प्रत्येक अचेतन पदार्थ को पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग के अन्तर्गत रक्खा जाता है । इसीलिए कहा जाता है कि हिन्दी में व्याकरणिक लिंग अधिक प्रचलित है ।

यदि सारे पुरूषवाची शब्द पुल्लिग तथा स्त्रीवाची शब्द स्त्रीलिंग और सारे बेजान पदार्थों के बोधक संज्ञा-पदों को एक सामान्य लिंग (common gender) में रख दिया जाए तो ऐसे लिंग-विधान को स्वाभाविक लिंग विधान (natural gender) कहा जाता है । किन्तु खेद है कि

हिन्दी के सभी संज्ञापदों में ऐसा लिंग -विधान नहीं मिलता है संस्कृत के नपुंसकलिंगवाची तथा फ़ारसी, अरबी आदि विदेशी भाषाओं के अनेक शब्दों के लिंग- निर्णय में प्रयोग, परम्परा या शब्द- रूप का ही सहारा लेना पड़ता है। शब्द- रूप पर आधारित इस लिंग - विधान को व्याकरणिक लिंग- विधान (grammatical gender) कहा जाता है हिन्दी में दोनों प्रकार का लिंग विधान मिलता है ।

हिन्दी में संज्ञापदों के अतिरिक्त आकारान्त विशेषण पद (अच्छा लड़का, अच्छी लड़की), कृदन्तीय क्रियापदों (लड़का जाता है, लड़की जाती है; लड़का आया, लड़की आयी) में भी लिंग-परिवर्तन होता है । बंगला, असमी, उड़िया में प्रमुखत: विशेषण तथा क्रिया में लिंग- परिवर्तन नहीं होता । विशेषण, क्रिया, आदि में भी लिंग परिवर्तन की हिन्दी की लम्बी परम्परा और व्यापकता है अतएव लिंग- सम्बन्धी इस प्रवृत्ति में परिवर्तन वांछनीय नहीं है, क्योंकि यह प्रवृत्ति हिन्दी की प्रकृति से सम्बन्धित है । इस तरह हिन्दी में पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के अनेक प्रत्यय है ।

स्त्रीलिंग प्रत्यय - पुरुष वाची संज्ञापदों में निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग पदों का निर्माण किया जाता है।

ई, इया, इन, नी, आनी, आइन, आ ।

1- प्राणिवाचक आकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं के अंत्य स्वर के बदले "ई" लगाई जाती हैं, जैसे -

लड़का + ई =	लड़की	घोड़ा + ई =	घोड़ी
बेटा + ई =	बेटी	बकरा+ ई =	बकरी
पुतला+ई=	पुतली	गधा + ई =	गधी
चेला + ई =	चेली	चींटा+ ई :	चींटी

§अ§ संबंधवाचक शब्द इसी वर्ग में आते है, जैसे

काका+ई=	काकी	नाना+ ई =	नानी
मामा+ ई=	मामी, माई	साला+ई =	साली
दादा + ई=	दादी	भतीजा+ई =	भतीजी
आजा+ई =	आजी	भानजा+ई =	भानजी

§आ§ निरादरया प्रेम में कहीं-कहीं "ई" के बदले "इया" आताहैऔर यदि अंत्याक्षर द्वित्व हो तो पहले व्यंजन का लोप हो जाता है जैसे-

कुत्ता+इया=	कुतिया	बुड्ढा+इया=	बुढ़िया
बच्छा+इया=	बछिया	बेटा+इया =	बिटिया

2- ब्राह्म्मणेतर वर्णवाचक या व्यवसायवाचक और मनुष्येतर कुछ प्राणिवाचक संज्ञाओं के अंत्य स्वर में "इन" लगाया जाता है; जैसे-

सुनार+इन=	सुनारिन	नाती+इन =	नातिन
लुहार+इन=	लुहारिन	अहीर+इन =	अहिरिन
धोबी+इन =	धोबिन	बाघ + इन =	बाघिन
तेली+इन =	तेलिन	कुँजड़ा+इन=	कुँजड़िन
साँप + इन=	सापिन		

3- कई एक संज्ञाओं में "नी" लगती है; जैसे-

ऊँट+ नी =	ऊँटनी		बाघ+नी =	बाघिनी
हाथी+नी=	हथनी		मोर+नी =	मोरनी
रीछ +नी =	रीछनी		सिंह+नी =	सिंहनी

4- उपनाम वाचक पुल्लिंग शब्दों के अन्त में "आइन" आदेश होता है; और जो आदि अक्षर का स्वर"आ" हो तो उसे ह्रस्व कर देते है -
जैसे- पंडित- पंडिताइन

बाबू+आइन=	बबुआइन	दुबे+आइन =	दुबाइन
ठाकुर+आइन=	ठकुराइन	पाठक+आइन =	पठकाइन
बनियां+आइन=	बनियाइन	मिसिर+आइन =	मिसिराइन
लाला+आइन=	ललाइन	सुकुल+आइन =	सुकुलाइन

5- कई एक शब्दों के अंत में "आनी" लगाते है; जैसे-

खत्री+आनी=	खतरानी	देवर+आनी =	देवरानी
सेठ+आनी =	सेठानी	जेठ+आनी =	जिठानी
मिहतर+आनी=	मिहतरानी	चौधरी+आनी =	चौधरानी
पंडित+आनी =	पंडितानी	नौकर+आनी =	नौकरानी

6- पूर्वोक्त नियम के विरूद्ध पदार्थवाचक अकारान्त व ईकारान्त शब्दो में विनो के लिए स्थूलता के अर्थ में "आ" जोड़कर पुल्लिंग बनाते है; जैसे-

घड़ी+आ =	घड़ा	डाल + आ =	डाला

गठरी+आ =	गठरा	छात्र+ आ =	छात्रा
चिद्ठी+ आ=	चिद्ठा	गुदड़ी+आ =	गुदड़ा

§7§ कोई- कोई पुल्लिंग शब्द स्त्रीलिंग शब्दों में प्रत्यय लगानेसे बनते है;
जैसे-

भेड़ -	भेड़ा	बहिन -	बहनाई
राँड़ -	रँडुआ	भैंस -	भैंसा
ननद -	ननदोई	जीजी -	जीजा

कभी- कभी " नर-मादा" शब्द जोड़कर भी लिंग बोध कराया जाता है । यथा- नर लोमड़ी, मादा लोमड़ी । हिन्दी का प्रमुख स्त्रीलिंग प्रत्यय "ई" है, अतएव अधिकांश ईकारान्त पद स्त्रीलिंग होते है और हिन्दी का पुल्लिंग प्रत्यय "आ" § घोड़ा, लड़का, आदि§ है जो हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल है । जैसे प्राकृत मे एकवचन पुल्लिग प्रत्यय "ओ" तथा अपभ्रंश में पुल्लिंग प्रत्यय "उ" है, उसी प्रकार हिन्दी में पुल्लिग प्रत्यय प्रमुखतः "आ" है ।

अपभ्रंश और हिन्दी लिंग की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन -

अपभ्रंश और हिन्दी के व्याकरणिक कोटियों के तुलनात्मक दृष्टि से हमें ज्ञात होता है कि अपभ्रंश एक संयोगात्मक वियोगात्मक भाषा है । जबकि हिन्दी एक पूर्णतः वियोगात्मक भाषा है तात्पर्य यह है कि अपभ्रंश में व्याकरणिक कोटिया मूल पद के साथ अधिकांशतः संयुक्त हो जाती है जब कि हिन्दी में मूल पद से अलग होकर भिन्न-भिन्न बनी रहती है।

संज्ञा के तुल्नात्मक दृष्टि से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि लिंग, वचन, कारक की व्याकरणिक कोटियो में कुछ रूप तो अपभ्रंश की व्याकरणिक कोटियो के अवशेष है और कुछ हिन्दी में नया विकास हुआ है ।

अपभ्रंश मध्यकालीन आर्य भाषा की अन्तिम कड़ी है जबकि हिन्दी आधुनिक आर्य भाषा है।

अपभ्रंश में तीन लिंग है जबकि हिन्दी में दो लिंग है ।

अपभ्रंश में संस्कृत पालि-प्राकृत की भांति तीन लिंग थे पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग । हिन्दी में नपुसंक लिंग लुप्त हो गया ।

अपभ्रंश में लिंग निर्णय कुछ तो स्वाभाविक है और कुछ व्याकरणिक । हिन्दी में व्याकरणिक लिंग ही मिलता है अर्थात् हिन्दी में लिंग निर्णय स्वाभाविक न होकर अन्तिम ध्वनि के अनुसार अथवा लोक परम्परा के अनुसार होता है ।

प्राकृत अपभ्रंश के वैयाकरण हेमचन्द्र, मार्कण्डेय, त्रिविक्रम आदि अपभ्रंश की लिंग व्यवस्था की कठिनाई को जानकर यह मानते हैं कि अपभ्रंश में लिंग अतंत्र है । दामोदर पंडित ‹बारहवीं तेरहवीं शताब्दी› लिंग निर्णय को लोकमत पर आधारित मानते है ।

हिन्दी में अपभ्रंश की भांति लिंग निर्णय को अतंत्र नही कहा जाता । मानक हिन्दी में लिंग के निश्चित प्रत्यय विकसित हो गए है।

संस्कृत में विशेषण का लिंग और वचन विशेष्य के अनुसार होता है जैसे- सुन्दरी भार्या अपभ्रंश में यह नियम कुछ शिथिल हो गया और हिन्दी मे यह नियम बदल ही गया अर्थात् हिन्दी में विशेष्य के अनुसार लिंग, वचन नहीं बदलता केवल अकारान्त शब्दों में अपवाद है। जैसे- अच्छा लड़का, अच्छी लड़की ।

अपभ्रंश में लिंग परिवर्तन साधारणतया मिलता है। जैसे- पुल्लिंग का स्त्रीलिंग में प्रयोग, स्त्रीलिंग का पुल्लिंग में प्रयोग इसे लिंग-विपर्यय कहते है । जैसे- अब्भा , लग्गा, डुङ्गरहिं' में अपभ्रंश नपुसंक लिंग का पुल्लिग के रूप में प्रयुक्त हुआ ।

इसी प्रकार "पाइ विलग्गी अंत्रडी" में अन्त्रम् नपुसंक का अंत्रडी स्त्रीलिंग रूप बन गया ।

"गय - कुम्भई दारन्तु " में कुम्भः पुल्लिंग का कुम्भइं नपुसंकलिंग रूप है ।

" पुणु डालइं मोडन्ति' स्त्रीलिंग का नपुंसकलिंग रूप है संस्कृत में विशेषण का लिंग और वचन, विशेष्य के अनुसार ही, होता है । अपभ्रंश में यह अनुशासन नहीं है,

"तुहु विरहग्गि किलंत"
गोरड़ी दिट्ठी मग्गु निअन्त"

अपभ्रंश में संबंध-वाचक वियोगी प्रत्यय कर, केर, केरक के लगने से 'सम्बन्धी' का लिंग वचन नही बदलता । किन्तु हिन्दी में संबंधवान के, का, के, की जो संबंध कारक प्रत्यय है। संबंधवान के अनुसार इनमें लिंग और वचन परिवर्तन होता है। जैसे इनका लड़का, इनकी लड़की, इनके लड़के ।

अपभ्रंश में आ, ई, उ में लिंग सम्बन्धी कोई कठिनाई नहीं है। अपभ्रंश में सब स्त्रीलिंग है/हिन्दी में कुछ ही शब्दों मे ऐसा पाया जाता है । मानक हिन्दी आकारान्त भाषा कहलाती है । इसके अधिकांश आकारान्त शब्द पुल्लिंग होते है। जैसे- लड़का, घोड़ा , बछड़ा आदि ।

हिन्दी में कुछ ही एकाध शब्द है जिनमें "आ", 'इका' लगाकर स्त्रीलिंग बनाया जाता है । जैसे- छात्र > छात्रा, अध्यापक > अध्यापिका ।

हिन्दी में ईकारान्त शब्द अधिकांशतः स्त्रीलिंग हैं जैसे घोड़ी, रानी आदि । हिन्दी का यह "ई" प्रत्यय संस्कृत के "टाप् " प्रत्यय (ङ.ीप और ङ.ीष्‌) का विकसित रूप है।

अपभ्रंश में कोमलता, लघुता या हीनता को बोधित करने के लिए स्वार्थिक डी प्रत्यय ﴾ हेम0 8/4/431 ﴿ का प्रयोग होता है। जैसे-गोरडी, अन्तडी, कुडुल्ली इत्यादि । आ0 भा0 आ0 हिन्दी आदि में थाली, झाड़ी, लकड़ी आदि इसी प्रकार के अपभ्रंशों के रूप हैं ।

अपभ्रंश में अकारान्त रूप भी स्त्रीलिंग का बोध कराते है जैसे- बहू ।

हिन्दी मे भी यह प्रवृत्ति चली आयी है।

जिस प्रकार मानक हिन्दी आकारान्त कहलाती है और इसमें 'आ' अधिकांशत पुंल्लिग का ही द्योतक है उसी प्रकार अपभ्रंश में उकारान्त शब्द अधिकांशतः पुल्लिंग होते है ।

जिस प्रकार प्राकृत में ओकारान्त शब्द पुल्लिंग होते है उसी प्रकार अपभ्रंश में उकारान्त पद पुल्लिंग होते है। जबकि मानक हिन्दी में आकारान्त शब्द पुल्लिंग होते है ।

अपभ्रंश में संस्कृत के कृदन्त प्रत्यय शतृ ﴾ अन्त ﴿ , शानच् ﴾माण﴿ प्रत्ययान्त से भी विशेषण लिंग का बोध कराते है। जैसे- " कावि वर रमणि... जलपवाह पंवहंति"

अपभ्रंश में पुल्लिंग शब्द उकारान्त है।

जैसे-	अप0	हि0
	फुल्लु	फूल

फलु > फल

अन्नु > अन्न

हिन्दी में स्त्रीलिंग के प्रमुख प्रत्यय निम्नलिखित हैं। "ई" जैसे- लड़की, नदी ।

गत पृष्ठों में स्पष्ट कर दिया गया है कि संस्कृत प्रत्यय (टाप्) "ई" (ङीप् और ङीष्) से विकसित हुआ है।

अपभ्रंश में भी 'इ' प्रत्यय स्त्रीलिंग का बोधक है लेकिन हिन्दी का "इ" प्रत्यय हिन्दी और संस्कृत दोनों के प्रभाव से विकसित हुआ है ।

'इआ", " इया" ये दोनों प्रत्यय संस्कृत के स्त्रीलिंग प्रत्यय "इका" से विकसित हुए हैं ।

प्राकृत, अपभ्रंश का इस प्रत्यय पर विशेष प्रभाव नही है।

हिन्दी स्त्रीलिंग प्रत्यय इन , नी, आनी, आइन आदि रूप प्रयुक्त होते है।

हिन्दी में "इन" प्रत्यय का नया विकास हुआ है । कहा यह जाता है संस्कृत नपुंसक लिंग प्रत्यय "आनी" का अपभ्रंश से आइन बना । इसी से "इन" और "नी" आदि स्त्रीलिंग प्रत्यय विकसित हो गये ।

इस प्रकार लिंग प्रत्यय के दृष्टिकोण से हिन्दी के कुछ स्त्रीलिंग प्रत्यय अपभ्रंश से विकसित हुए हैं और कुछ का स्वतन्त्र विकसित अन्य श्रोतों से हुआ। इस प्रकार अपभ्रंश में संयोगात्मक प्रत्यय और हिन्दी में वियोगात्मक प्रत्यय हैं ।

अपभ्रंश में वचन

संख्याबोधन के लिए प्राचीन भारोपीय भाषाओं में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन के प्रयोग थे। विकास श्रृंखला में यूरोपीय भाषाओं में और भारतीय भाषाओं में भी सरलीकरण की प्रवृत्ति ने द्विवचन का लोप कर दिया। म0 भा0 आ0 में एकार्थ एकवचन और अनेकार्थ बहुवचन ही रह गये संस्कृत में जातिवाचक होने पर एकवचन का प्रयोग हो जाता था। आदरार्थ बहुवचन का विधान था। प्राकृत के प्रारम्भिक काल में ही पालि और शिलालेखीय प्राकृतों में द्विवचन जाता रहा। दो को बताने के लिए द्वि विशेषण का बहुवचनान्त संज्ञा के साथ योग कर दिया जाता था जैसे अशोक के गिरनार शिलालेख में "दुवे मोरा" में दुवे विशेषण द्वित्व का बोधन करता है। प्राकृत के मध्यकाल के व्यवहार को देखकर वररुचि ने तो स्पष्ट ही "द्विवचनस्य बहुवचनं" नियम बना दिया। अन्य प्राकृत वैयाकरणों ने इसका समर्थन किया। कवियों के साहित्यिक प्रयोगों में इसकी पुष्टि हुई। उत्तरकालीन प्राकृत अर्थात् अपभ्रंश में भी यही स्थिति रही। द्वित्व का बोधन संख्यावाचक "द्वि" शब्द का उपयोग ही करता था यथा-

पहिउ भणिअ विवि दोहा संदेशरासक 2/32

वेवि सहोअर रामगिरी लहिअउं वेवि तुरंग। 4/62

उक्ति व्यक्तिकार ने स्पष्ट नियम दिया कि एकत्व द्वित्व और बहुत्व संख्या का बोध संख्या के प्रयोग से ही जानना चाहिए । अपनी वृत्ति मे लिखा -

" इहापभ्रंशे संख्या एकादिका संख्ययैवोत्कोर्तितव्या ज्ञेया; न पुनरूपायान्तरे - णेत्यर्थ : ।

द्वित्वबहुत्वयोस्तुल्योक्तिकत्वात् । तद्यथा" एक जा" एको याति, एका वा, एकंवा । " दुइ अच्छति" द्वौ तिष्ठत: द्वे वा तिष्ठत: द्वे वा । " बहुत पुतभए" - बहव: पुत्रा: बभूवु: । "दुई बेटो भई-" द्वे बेटिटके -बभूवतु: ।

अपभ्रंश काल तक आते-आते प्राचीन ﴾प्रा० भा० आ० म० भा० आ०﴿ बहुवचन प्रत्यय लुप्त हो चुके थे; जैसे- प्रा० भा० आ० पुत्र: - पुत्रा:

म० भा० आ० पुत्तो, पुत्ते, पुत्ता > परवर्ती म० भा० आ० या अप० पुत्त , पुत्ति, पुत्त > आ० भा० आ० पुतु , पूति, पूत । अस्तु हिन्दी आदि आ० भा० आ० में बहुवचन प्रकट करने के लिए नए उपाय खोजे जाने लगे, परन्तु आरम्भिक दिनों मे एकवचन और बहुवचन रूपों में कोई अन्तर नही था; केवल प्रसंग सेही उनकी भेदकता स्पष्ट हो जाती थी ।

"वर्ण रत्नाकर" की आरम्भिक मैथिली में विशेषणों तथा भूत कृदन्तों को बहुवचन बनाने के लिए-आह प्रत्यय का प्रयोग होता था; जैसे-अनेक बालघोल से अनुआह, से कइसनाह, तरूणाह, नोनुआह, वलिआह, गुराह... तंकाउत्तोर्णाह ﴾ पृष्ठ 19-20﴿

---

143 चैटर्जी वर्णरत्नाकर, अंग्रेजी भूमिका, पृष्ठ 47

यह - आह अपभ्रंश को षष्ठी एकव०प्रत्यय (= अस्य प्रा० भा० आ०) प्रतीत होती है जिसका विस्तार बहुवचन के लिए भी हुआ है। (डा० चैटर्जी) परन्तु इसे पु० अकारान्त के संस्कृत बहुव० विसर्ग पूर्वक आकारान्त से भी संबद्ध कर सकते हैं । हिन्दी में इस प्रकार के प्रयोग नहीं मिलते । परन्तु षष्ठी एकवचन प्रत्यय का प्रयोग बहुवचन के लिए अनहोनी बात नहीं । बँगला में - एरा लगाकर बहुवचन बनाया जाता है । जो षष्ठी एकवचन एर < केर (अप०) से संबंद्ध है। भोजपुरिया मे हमनीका, तोहनीका इस प्रकार के उदाहरण हैं । फिर भी आधुनिक मैथिली मे आह प्रत्यय का प्रयोग केवल आदरार्थ बहुवचन के लिए ही सीमित रह गया है (डा० चाटुर्ज्या)।

पुरानी हिंदी में किसी कारक के बहुवचन के लिए बिना भेद के - न, न्ह, न्हि, प्रत्यय का प्रयोग होता था । आधुनिक हिन्दी में ए, एँ, ओं, इयाँ रूप बहुवचन के लिए मिलते हैं जिनमें से द्वितीया और चतुर्थ स्त्रीलिंग शब्दों के लिए आते हैं और शेष पुल्लिंग के लिए। पंडितों ने इन आधुनिक प्रत्ययों को प्राचीन-प्राचीन बहुवचनान्त प्रत्ययों का ही विकास कहा है। बहुवचन के लिए- न, न्ह, न्हि का प्रयोग 'वर्ण रत्नाकर' और कीर्तिलता के ही समय से मिलता है । - "न्हि" को डा० चाटुर्ज्या ने तृतीया बहुवचन प्रत्यय के रूप में समझा है और उसे तृतीया एकव० अप० - हि < प्रा० भा० आ० भि: तथा षष्ठी बहुव० प्रत्यय - ण < आनाम्

---

§ प्रा० भा० आ० § का संयुक्त रूप माना है। कभी-कभी न्हि का प्रयोग बहुवचन अंग § Oblique § के लिए हुआ है जिसके आगे षष्ठी का भी जोड़ा जाता था ।

उल्का मुखन्हिक उद्योत । खद्योतन्हिक तरंग । युवतिन्ह क' उत्कंठा । § वर्णरत्नाकर §

उक्त-"न्हि" के हिन्दी में अनेक रूप मिलते है -"न्ह"भी उन्हीं में से एक है। वस्तुत: यह तृतीया का रूप है । "न्ह" को "न" "नु" "नि" वाले बहुवचन रूपों से भिन्न समझना चाहिए क्यों कि उसका प्रयोग कर्मणी और इनका कर्तरि होता है। यह विचारणीय है कि कई स्थलों पर जहाँ- 'नि" होना चाहिए रत्नाकरजी ने वहाँ § बिहारी सतसई में §-'नु' कर दिया है। जैसे'दृगनि'के लिए'दृगनु "।

बहुवचन प्रत्यय - "न" की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से बताई जाती है।

1- कर्ता कर्म बहुवचन- आनि से । जैसे फलन < फलानि ।

2- समूह वाचक " जन " या "गण"से । जैसे कविन < कविजन ।

3- षष्ठी बहुवचन - आनां से है।

अन्तिम मत अधिक संगत प्रतीत होता है ।

प्रत्यय -

हिन्दी में बहुवचनबोधक निम्नलिखित प्रत्यय प्रमुख हैं -

§1§ शून्य -

आकारान्त पुल्लिंग शब्दों को छोड़कर शेष पुल्लिंग के मूलरूप में शून्य प्रत्यय बहुवचन के रूप में लगता है । यथा -

ए0व0	ब0 व	प्रत्यय
घर्	घर्	शून्य
कवि	कवि	शून्य
पक्षी	पक्षी	शून्य
जौ	जौ	शून्य
डाकू	डाकू	शून्य

ऐसे संज्ञापदो के बहुवचन का बोध पदात्मक स्तर पर न होकर वाक्यात्मक स्तर पर क्रिया के सहारे जाना जाता है। यथा- उसके तीन घर §ब0व § हैं । "हैं" बहुवचन क्रिया से "घर" बहुवचन का बोध होता है । इसी प्रकार आकाश में पक्षी उड़ रहे हैं, डाकू पकड़े गये आदि ।

ऐसे पदों के बहुवचन का बोध कराने के लिए कभी-कभी इन संज्ञापदों के पूर्व एक से अधिक पूर्ण संख्याबोधन पद या " बहुत" "कुछ" तथा बाद में "गण" लोग वृन्द आदि बहुवचनबोधक शब्द जोड़ दिये जाते है ।

2- "ए" - आकारान्त पुल्लिंग पदों ﴾ संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया﴿ में "ए" प्रत्यय जोड़कर मूलरूप बहुवचन का निर्माण किया जाता है। यथा -

ए०व	ब० व०	प्रत्यय	विशेष
लड़का	लड़के	ए	अंतिम "आ" का लोप
बेटा	बेटे	ए	"
पैसा	पैसे	ए	"

3- "एँ" व्यंजनान्त, आकारान्त, अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञापदों में "एँ" लगाकर मूल रूप बहुवचन बनाया जाता है यथा-

ए०व०	ब०व०	विशेष
बात	बातें	प्रतिपदिक व्यंजनान्त होने के कारण "एँ"
किताब	किताबें	व्यंजन से संयुक्त हो गया
बहू	बहुएँ	प्रतिपदिक का अंतिम दीर्घ स्वर प्रत्यय "ए" लगने से ह्रस्व हो गया।

4- "आँ" - ईकारान्त स्त्रीलिंग पदों में "आँ" जोड़कर मूल रूप बहुवचन के रूप निर्मित होते है। यथा -

ए०व०	ब०व०	प्रत्यय	विशेष
नदी	नदियाँ	आँ/याँ	प्रत्यय "आ" से दीर्घ "ई" ह्रस्व हो गयी

स्त्री	स्त्रियाँ	अँ > याँ और "आँ" से पूर्व "य्" श्रुति का आगम हो गया
लड़की	लड़कियाँ	अँ > याँ
बेटी	बेटियाँ	अँ > याँ

5- इयाकारान्त संज्ञाओं में केवल (ं) जोड़कर ही मूल रूप बहुवचन का रूप बनाया जाता है। यथा-

ए०व०	ब०व०
गुड़िया	गुड़ियाँ
डिबिया	डिबियाँ
बुढ़िया	बुढ़ियाँ

विशेष -

क्रियापद में "है" में भी अनुस्वार (ं) जोड़कर बहुवचन का रूप बनाया जाता है यथा-

ए०व०	ब०व०
लड़का है	लड़के हैं

(6) "ओं" स्वरान्त, व्यंजनान्त, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग सभी प्रकार के संज्ञापदों में विकृत रूप बहुवचन का निर्माण "ओं" प्रत्यय लगाकर होता है। यथा-

ए०व०	ब०व०	प्रत्यय	विशेष
लड़का	लड़कों	ओं	प्रतिपादिक के अंतिम "आ" का लोप हो गया।
घोड़ा	घोड़ों	ओं	प्रतिपादिक के अंतिम "आ" का लोप हो गया।

कवि	कवियों	ओं "ओं" के पूर्व "य्" श्रुति का आगम
नदी	नदियों	ओं "ओं" के पूर्व "य्" श्रुति का आग
बात्	बातों	ओं अंतिम व्यंजन से ओ मिल गया
घर्	घरों	ओं अंतिम व्यंजन से ओ मिल गया
सरिता	सरिताओं	ओं आकारान्त (तत्सम) में अंतिम "आ" का लोप नही होता है।
माला	मालाओं	ओं आकारान्त (तत्सम) में अंतिम "आ" का लोप नही होता है ।

उपर्युक्त "ए" "एँ" आँ ओं आदि बहुवचनबोधक प्रत्यय महत्वपूर्ण व्याकरणिक कोटियाँ हैं ।

हिन्दी की जनपदीय खड़ी बोली और हरियानी में लगभग यही प्रत्यय मिलते हैं । पश्चिमी हिन्दी की उपभाषा ब्रज तथा जनपदीय बुंदेली, कन्नौजी मे मुख्य बहुवचन हैं - ए, (मेले) एं (रातें0) इन (बेटिन), अन, यन (पोथियन) । ब्रजभाषा में कर्त्ता एकवचन ओकारान्त होता है। यथा- छोरो, मूसो, आदि ।

पूर्वी हिन्दी की अवधी उपभाषा में कर्त्ता एक वचन में तीन रूप मिलते हैं - घोड़, घोड़वा, घोड़ौना । बहुवचन बनाने के लिए निम्नलिखित

प्रत्ययों का प्रयोग होता है। व्यंजनान्त ह्रस्व रूप "घोड़" में शून्य प्रत्यय लगाकर बहुवचन का रूप निर्मित होता है। हिन्दी की भाँति मूल रूप बहुवचन यहाँ भी "ए" है । यथा- घोडवे, घोडौने ।

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों में हिन्दी की भाँति मूल रूप में ही "आँ" "याँ" जोड़ा जाता है। यथा बिटिया- बिटियाँ । विकृत रूप ब0 व0 में "अन", "वन" (लड़कन- लड़कवन) जोड़कर बहुवचन के रूप निर्मित किये जाते हैं । पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी के अतिरिक्त हिन्दी और उसकी उपभाषाएँ - बिहारी तथा पहाड़ी में बहुवचन की अपनी पद्धति है।

आ0 भा0 आ0 की पंजाबी तथा लँहदा में बहुवचन बनाने की प्रक्रिया मानक हिन्दी से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इन समस्त भाषाओं के बहुवचनबोधक प्रत्ययों के तुलनात्मक अध्ययन (समानता और विभिन्नता) से हिन्दी के निजीपन तथा वैज्ञानिकता को पहचाना जा सकता है ।

अपभ्रंश और हिन्दी वचन की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन -

अपभ्रंश और हिन्दी की बहुवचन सम्बन्धी व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश के बहुवचन प्रत्यय अधिकांशतः संयोगात्मक है जबकि हिन्दी के प्रत्यय अधिकांशतः वियोगात्मक है । हिन्दी के प्रमुख बहुवचन प्रत्यय - शून्य प्रत्यय, ए प्रत्यय, एँ प्रत्यय, याँ प्रत्यय, ें प्रत्यय, ं प्रत्यय, ओं प्रत्यय, कुछ विदेशी प्रत्यय । उपर्युक्त ये सारे प्रत्यय वियोगात्मक परसर्ग है। दृष्टान्त निम्नलिखित है।

लड़का > लड़के

बात > बातें

लड़की > लड़कियाँ

गुड़िया > गुड़ियाँ

है > हैं

लड़का > लड़कों

अपभ्रंश के अधिकांश प्रत्यय संयोगात्मक है।

जैसे- ∅, उ, ओ, हिं

हं, हुं, तिं, हो

अहिं, अइं, एं

अपभ्रंश और हिन्दी दोनों में शून्य प्रत्यय का प्रयोग होता है। हिन्दी में जैसे - यह कहार क्या कर रहे हैं । अपभ्रंश में - " ए कहार काह संपाडति ।

हिन्दी के बहुवचन प्रत्यय "ए" का अपभ्रंश में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता/विद्वानों का मत है कि प्राकृत अपभ्रंश काल के कई प्रत्ययों से मिलकर हिन्दी का "ए" प्रत्यय विकसित हुआ है । अपभ्रंश में बहुवचन प्रत्यय "अहि", " अइ " अनेक स्थलों पर मिलता है सम्भावना यही प्रतीत होती है कि "ए" प्रत्यय इसी "अहि", "अइ" का विकसित रूप है।

"एं" बहुवचन का सम्बन्ध संस्कृत प्रत्यय "आनि" और अपभ्रंश प्रत्यय "आइं" से है ।

"याँ " बहुवचन प्रत्यय संस्कृत के नपुंसक लिंग "आनि" प्रत्यय फिर अपभ्रंश से " आइं", "याँ " से विकसित हुआ है।

अपभ्रंश बहुवचन प्रत्यय ' ं ' अनुस्वार का ही शेष है।

हिन्दी के विकारी रूप बहुवचन के प्रत्यय "ओं" का सम्बन्ध संस्कृत के षष्ठी बहुवचन "आनाम" से विकसित हुआ है। इसी "आनाम" से अपभ्रंश में "अन्न", आनि", "न्ह" तथा "अहु" से "ओ" "ओं" प्रत्यय निकला है ।

इस प्रकार अपभ्रंश बहुवचन प्रत्यय और हिन्दी बहुवचन प्रत्यय की तुलना से निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अधिकांशतः हिन्दी बहुवचन प्रत्यय अपभ्रंश बहुवचन प्रत्यय के विकसित रूप हैं ।

अपभ्रंश में कारक विभक्ति

संस्कृत , प्राकृत और पालि भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत की तुलना में प्राकृत और पालि में कारक विभक्तियों का ह्रास हुआ है । पालि में चतुर्थी और षष्ठी विभक्तियों के भेद अदृश्य हो गये । प्राकृत में भी चतुर्थी विभक्ति अदृश्य प्राय है । अपभ्रंश में विभक्तियों का ह्रास पालि - प्राकृत की अपेक्षा अधिक हुआ है। अपभ्रंश में कारक विभक्तियों में सरलीकरण और एकीकरण का परिणाम यह हुआ कि विभक्ति प्रत्ययों की संख्या में कमी के साथ एकरूपता भी आ गयी । अपभ्रंश में कर्त्ता (प्रथमा) , कर्म (द्वितीया) और सम्बोधन में शब्द- प्रकृति का अविकारी रूप अधिक प्रयुक्त होने लगा । यह रूप करण और अधिकरण में भी उपयोग मे आने लगा । एकवचन मे उ और बहुवचन मे आ प्रत्ययों की प्रधानता हुई ।

तृतीया (करण) और सप्तमी (अधिकरण) के एकवचन में "ए" या उसका ह्रस्वीकृत रूप "इ" या उसका अनुनासिकी कृत रूप "एँ" और "इं" ही मुख्य रूप से उपयोग में आते रहे । प्राकृत में चतुर्थी और षष्ठी का भेदभाव मिलता है, यह अपभ्रंश में भी वर्तमान है। (वररूचि, प्राकृत- प्रकाश, 6/64; चण्ड 2/13) । "आदन्नहं मडभीसडी जो सज्जन सो देइ ।" में "आदन्नहं" में चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग है। तृतीय विभक्ति के स्थान पर षष्ठी

विभक्ति का भी उपयोग होता है -'कन्तु जु सीहहों उवमिअइ तसु हउं खण्डिअ माणु " में " सीहहो" में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग दृष्टव्य है । कितने ही शब्दों में सप्तमी और तृतीया के एकवचन और बहुवचन के रूप समान रूप से बनते हैं । सप्तमी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग, पंचमी के स्थान पर तृतीया और सप्तमी विभक्ति का प्रयोग और कहीं- कहीं पंचमी और षष्ठी के एकवचन का समान होना विशेष रूप से दिखाई देते हैं ।

अपभ्रंश के शब्द- रूपों में विभक्तियों का सरलीकरण और एकीकरण हुआ है। इस प्रक्रिया के कारण विभक्ति- प्रत्ययों की संख्या में कमी हुई है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अपभ्रंश में §1§ द्वितीया और चतुर्थी का अन्तर समाप्त हो गया §2§ तृतीय और सप्तमी के एकवचन और बहुवचन के रूप समान हो गये §3§ प्रथमा और द्वितीया का भेद समाप्त हो गया । §4§ कहीं- कहीं पंचमी और षष्ठी के रूप भी एक से हो गये । अपभ्रंश में शब्दों में संस्कृत, पालि, और प्राकृत की अपेक्षा सरलीकरण की प्रवृत्ति अधिक रही है। अपभ्रंश में कर्त्ता, कर्म और सम्बन्ध की विभक्तियों का व्यापक रूप से लोप हुआ है। पालि काल में ही कर्म और सम्प्रदान की विभक्तियों का अभाव होने लगा था § हो भी गया था§ पालि शब्दों में संस्कृत की छाया स्पष्ट है। अपभ्रंश के शब्द-रूपों में यह कम दीख पड़ता है। अपभ्रंश में देशज, स्थानी तथा विभिन्न बोलियों के भी बहुत से शब्द प्रयुक्त हैं ।

प्राकृत से अपभ्रंश तक आते आते केवल तीन विभक्तियाँ प्रथमा, षष्ठी और सप्तमी ही शेष रह गई थीं । कर्ता और कर्म परस्पर मिल गए । करण का

समावेश अधिकरण हो गया । सम्बन्ध कारक में अपादान समा गया । सम्प्रदान तो अपभ्रंश से पूर्व ही सम्बन्ध कारक का अंग बन चुका था । इतना होने पर भी अपभ्रंश में विभक्ति - प्रयोग में एक विशेष प्रवृत्ति सर्वत्र मिलती है, वह है शब्द की अकारान्तता । अन्तिम व्यंजन का लोप हो जाता है । स्त्रीलिंग मे अकारान्तता की प्रवृत्ति मिलती है। कुछ शब्द एकारान्त और ओकारान्त भी है, परन्तु वे बहुत कम है। जहाँ हैं भी, वहां इकारान्त और उकारान्त हो गये हैं । अधिकांशतः अपभ्रंश की शब्द रूपावली में दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वरों में परिवर्तित मिलते हैं ।

कर्ता और कर्म में विभक्तियों के सूचक संस्कृत प्राकृत रूप पूर्णतः लुप्त दिखाई देते हैं । यथा-

(1) केहउ मग्गण एहुं ।

(2) सुपरिस कंगुहे अणुहरिहिं ।

(3) लेवि महव्वय सिवु लहहिं ।

(4) जो गुण गोवइ अप्पणा ।

इन उदाहरणों में रेखांकित शब्द क्रमशः कर्ताकारक एकवचन, कर्ताकारक बहुवचन, कर्मकारक एकवचन तथा कर्मकारक बहुवचनहैं । इन शब्दों में कारक-सूचक परसर्गों का भी प्रयोग दिखाई नहीं देताहै। परन्तु कहीं-कहीं कर्ता और कर्म कारकों के लिए प्रयुक्त शब्दों में एकवचन में उकारान्त प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं । यथा-

सायरू उप्परि तणु धरइ ।

करण और अधिकरण कारकों में बहुवचन में "हि" "हिं" का प्रयोग मिल जाता है । जैसे -

§1§ अंगिहि गिम्ह ।

§2§ अत्थिहिं ठाउ पेडइ ।

अन्तिम उदाहरण में रेखांकित शब्द बहु वचन अधिकरण कारक का है और द्वितीय उदाहरण में "करण" का । कभी-कभी अधिकरण कारक के एकवचन में भी "हिं" प्रयोग होता है । जैसे-

एक्कहिं उन्क्खिहिं सावणु ।

इस वाक्य में रेखांकित शब्द एक वचन अधिकरण के उदाहरण हैं ।

करण, सम्प्रदान और सम्बन्ध में प्रयुक्त "तण" तथा उसके रूपों के परसर्गीय प्रयोग निम्नांकित उदाहरण हैं -

§1§ केहि तणेण, तेहि तणेण । § करण कारक §

§2§ महु तणइ । § करण कारक§

§3§ सिद्ध तणहो तणेण । § सम्प्रदान कारक§

§4§ बड्डतण हो तणेण । § सम्प्रदान कारक §

§5§ अह भग्गा अम्हहं तणा ।§ सम्बन्ध कारक§

§6§ इमु कुल तुह तणउं । § सम्बन्ध कारक §

इस प्रकार विभक्ति का लोप, संज्ञा शब्दों में प्रायः कारक-चिन्ह या परसर्ग के प्रयोग का भी प्रभाव और जहाँ परसर्गों का प्रयोग वहाँ

उनका संज्ञा शब्द से अलग रहना आदि प्रवृत्तियाँ अपभ्रंश में विकसित हुई हैं, जिनसे उसके स्वतंत्र व्याकरण को अस्तित्व मिला है।

अपभ्रंश मे ईकारान्त, उकारान्त और हलन्त शब्दों के अकारान्त बनाने की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से परिलक्षित होती है; जैसे -

अपभ्रंश		संस्कृत
बाह, वाहा	<	बाहु
सस	<	स्वसृ
मन	<	मनस्
जग, जगु	<	जगत
जुव्वण	<	युवन्
अप्प	<	आत्मन्

अपभ्रंश में इकारान्त और आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति भी मिलती है; जैसे

अपभ्रंश		संस्कृत
वीण	<	वीणा
वेणि	<	वेणी
मालइ	<	मालती
पडिम	<	प्रतिमा
पुज्ज	<	पूजा
कील	<	क्रीडा

संस्कृत के आकारान्त शब्दों को अपभ्रंश में इकारान्त करने को प्रवृत्ति भी मिलती है; जैसे-

निसि < निशा

दिसि < दिशा

कहि < कथा

अकारान्त शब्द रूप

पुत्त < पुत्र § पुल्लिंग शब्द§

विभक्ति	एक वचन	बहुवचन
प्रथमा	पुत्तु, पुत्त, पुत्तो, पुत्तउ, पुत्तउंपुत्ता	: पुत्त, पुत्ता
द्वितीया	पुत्तु, पुत्त पुत्तहों, पुत्तं	: पुत्त, पुत्ता
तृतीया	पुत्तेण, पुत्तिण, पुत्तें, पुत्ते,	: पुत्तहिं, पुत्तहि,
	पुत्तिं , पुत्तइं, पुत्तेणं	पुत्तेंहि, पुत्तेंहि,
		पुत्तिहिं, पुत्तिहि
चतुर्थी षष्ठी	पुत्तस्स, पुत्तस्सु, पुत्तहो, पुत्तहु	: पुत्ताणं, पुत्ताण, पुत्तहं
		: पुत्ताहं पुत्तह
पंचमी	पुत्तिहें, पुत्तहु, पुत्तहो	: पुत्तहं§ पुत्तहुं§
सप्तमी	पुत्ति, पुत्ते, पुत्तहं, पुत्तइं,	: पुत्तहि, पुत्तेसु
	पुत्तइ, पुत्तए पुत्तम्मि	पुत्तिहिं
सम्बोधन	पुत्त, पुत्ता	: पुत्तहो, पुत्तहु

पुत्त {<पुत्र} के उपर्युक्त रूपों में पुत्तो, पुत्तं, पुत्ताणं, पुत्तम्मि महाराष्ट्री प्राकृत के रूप हैं। इसमें यह भी द्रष्टव्य है कि चतुर्थी और षष्ठी के रूप एक से हैं। पंचमी और षष्ठी - दोनों में मिश्रण है। नासिक्य प्रयोग से तथा ऐं और इ, औं और उ के संभ्रम से नये रूप अस्तित्व में आये हैं। सप्तमी और तृतीया के रूपों में भी एकता है।

देव {पुल्लिंग}

कर्ता-	देव, देवा, देवु, देवो	देव, देवा
कर्म -	देव, देवा, देवु	देव, देवा
करण-	देवें, देवें, देवेण, देविण, दइवेण	देवहिं, देवेहिं
अपादान-	देवहे, देवहु, देवाहे, देवाहो	देवहुं, देवाहुं
सम्बन्ध-	देव, देवसु, देवहों, देवस्स	देव, देवहं
अधिकरण-	देवें, देवि	: देवहिं
सम्बोधन-	देव, देवा, देवु, देवो	देव, देवा, देवहो

" देव शब्द की प्रस्तुत रूप तालिका से स्पष्ट है कि प्रथमा {कर्ता} द्वितीया {कर्म} और सम्बोधन के रूप समान हैं। सम्बोधन में विभक्ति का लोप न होकर उसको "हो" आदेश हुआ है। { आमन्त्र्ये जसो हो" : द्रष्टव्य सि0 हे0 8 }

अकारान्त नपुंसकलिंग -

कमल

	एक वचन		बहुवचन
प्रथमा द्वितीय	कमलु, कमल	:	कमलइं, कमलाइं

§ शेष रूप अकारान्त पुल्लिंग संज्ञा रूपों के समान §

फल

प्रथमा	फलु	:	फलाइं
द्वितीया	फल	:	फलइं

§शेष रूप अकारान्त पुल्लिंग संज्ञा रूपों के समान होते है ।

इकारान्त और उकारान्त पुल्लिंग और नपुंसकलिंग में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता । नपुंसकलिंग में वारिइं, वारीइं या महुइं, महूइं रूप प्रथमा द्वितीया एकवचन और बहुवचन में होते हैं ।

अपभ्रंश में नपुंसकलिंग शब्दों के कर्त्ता और कर्म- रूपों में थोड़ी सी भिन्नता है। शेष विभक्तियों में पुल्लिंग के ही समान रूप बनते है । प्रथमा §कर्ता§ और द्वितीया § कर्म§ के बहुवचन में "इं" आदेश होता है §§"क्लीबे जस शसोरिं सि0 है0 8/4/353 § जैसे कमलु - कमलइं § । नपुंसकलिंग में "क" प्रत्ययान्त शब्दों को कर्त्ता और कर्म के एक वचन में "उं" आदेश होता है § कान्तस्यात उं स्यमो " सि. है. 8/4/354§, जैसे तुच्छउं < तुच्छकं, भग्गउं < भग्नकं, पसरिअउं < प्रसृतकं ।

इकारान्त पुल्लिंग शब्द

गिरि

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	गिरि, गिरी	गिरि, गिरी
कर्म	" "	" "
करण	गिरिए, गिरिण, गिरि	गिरिहिं
अपादान	गिरिहे	गिरिहुं
सम्बन्ध	गिरि, गिरिहे	गिरि, गिरिहं, गिरिहुं
अधिकरण	गिरिहि	गिरिहुं
सम्बोधन	गिरि, गिरी	गिरि, गिरी, गिरिहो

इकारान्त और उकारान्त पुल्लिंग शब्दों के रूपों तथा अकारांत शब्दों के रूपो में विशेष अन्तर नहीं है। कर्त्ता और कर्म के रूपों में कोई अन्तर नहीं है। गिरि शब्द का उपर्युक्त रूपाख्यान द्रष्टव्य है। करण के एकवचन में "ए" अनुस्वार और ण - ये दो आदेश होते हैं। { द्रष्टव्य गिरिएं, गिरि " गिरिण" " एचेदुत " । सि. हे 8/4/342} करण के बहुचन में 'हि' का प्रयोग होता है। अपादान के एकवचन में "हे" आदेश होता है। { 'ङसि म्यसुङिनां हे - हुं - हमः सि0 हे0 8/4/341 } जैसे "गिरिहे"। अपादान के बहुवचन में इकारान्त शब्द के रूप अकारान्त को ही

भाँति है। सम्बन्ध में एकवचन विभक्ति लोप वाला एक ही रूप है । सम्बन्ध के बहुवचन में "हं" और "हुं " विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं (गिरिहं, गिरिहुं) अधिकरण के एकवचन में "हि" आदेश होता है । इकारान्त शब्दों के सम्बोधन रूपों में अकारान्त शब्द के सम्बोधन के उ और ओ वाले रूप नहीं होते । उपर्युक्त रूपों से स्पष्ट है कि अकारान्त शब्द रूपों की अपेक्षा इकारान्त - उकारान्त शब्दों के रूपों में कमी है ।

इकारान्त पुल्लिंग

अग्गि या अग्गी (< अग्नि)

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	अग्गी, अग्गि	अग्गी, अग्गिहो
कर्म	" "	" "
करण	अग्गिंण, अग्गिं, अग्गिएं	अग्गिहिं
अपादान	अग्गिहें, अग्गिहिन्तो	अग्गिहुं, अग्गीहिन्तो
सम्बन्ध	अग्गिहिं	अग्गिहिं , अग्गिहु, अग्गि
अधिकरण	अग्गिहिं	अग्गिहिं, अग्गिहुं
सम्बोधन	अग्गि, अग्गी	अग्गिहों

उकारान्त पुल्लिंग

वाउ (< वायु)

कर्ता कर्म	वाउ, वाउं	वाउ, वाउं

करण	वाउण, वाउं ﴾ वाएं﴿	बाउहिं, वाउहिं, वाउहि
अपादान	वाउहे वाउहिन्तो	बाउहुं, वाउहिन्तो
सम्बन्ध	वाउहे	वाउहिं, वाउहुं, वाउ
अधिकरण	वाउहिं	वाउहिं, वाउहुं
सम्बोधन	वाउ, वाऊ	वाउहों

पुल्लिंग शब्द के विभक्ति चिन्ह ﴾ चिन्ह विभक्तिलोप के चिन्ह है ﴿

कर्ता	0, उ, ओ	0
कर्म	0, उ	0
करण	ए, एं, ण	हिं, एहिं
अपादान	हे, हु	हुं
सम्बन्ध	0, सु हो, स्सु	0, हं
अधिकरण	इ, ए	हिं
सम्बोधन	0, उ, ओ	0, हो

इकारान्त - उकारान्त शब्दों के विभक्ति चिन्ह

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	0	0
कर्म	0	0
करण	ए. ण,	हिं
अपादान	हे	हुं

सम्बन्ध	0	0, ह, हु
अधिकरण	हि	हुँ
सम्बोधन	0	0, हो

अकारान्त/आकारान्त स्त्रीलिंग

आकारान्त नाम का अन्तिम आ ह्रस्व कर दिया जाता है। प्रत्यय लगाने के लिए दो मूल रूप सुलभ हैं -

माल, माला < माला

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	माल	मालउ
	माला	मालाउ
द्वितीया	माल	मालउ
	माला	मालाउ
तृतीया	मालाए, मालहे	मालहिं
	मालाइ, मालइ, मालाए	मालाहिं
चतुर्थी+षष्ठी	मालहे, मालहें, मालहिं	मालहं
	मालहिं मालहो	
पंचमी	मालहे	मालहु
	मालाहे	मालाहु
सप्तमी	मालहे	मालहिं
	मालए	मालाहिं

सम्बोधन	माल	मालहिं, मालउ
	माला	मालाहिं, मालाउ

मुद्धा § < मुग्धा §

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा §कर्ता§	मुद्ध, मुद्धा	मुद्धाउ, मुद्धाओ
द्वितीया§कर्म§	मुद्ध	मुद्धाउ, मुद्धाओ
तृतीया §करण§	मुद्धए § मुद्धइ§	मुद्धहिं
पंचमी §अपादान§	मुद्धहे	मुद्धहुं
षष्ठी§सम्बन्ध §	मुद्धहे	मुद्धहुं
सप्तमी अधिकरण	मुद्धहि	मुद्धहिं
सम्बोधन	मुद्ध, मुद्धा,	मुद्ध, मुद्धा, मुद्धहो, मुद्धाओ

हेमचन्द्र ने मुद्धा < मुग्धा शब्द का सविस्तर व्याख्यान किया है । उनका कथन है कि §1§ अपभ्रंश में स्त्रीलिंग शब्द के कर्ता और कर्म के बहुवचन में "उ" और "ओ" आदेश होते हैं [1]जैसे- मुद्धाउ, मुद्धाओ । §2§ करण § तृतीया§ के एक वचन में "ए" आदेश [2] होता है , जैसे- मुद्धए । §3§ तृतीया के बहुवचन में "हिं' आदेश होता है, जैसे मुद्धहिं । §4§ अपादान के एकवचन में "हे" आदेश [3] होता है, जैसे- मुद्धहे । §5§ अपादान के बहुवचन

1- "स्त्रियाँ जस - शसोरूदोत - सि0 हे0 8/4/348
2- "टए" " " 8/4/349
3- "ङ. स ङस्यार्है " " 8/4/350

में "हु" आदेश [1] होता है, जैसे- मुद्दहु । §6§ सम्बन्ध के एकवचन में "हे" और बहुवचन में "हु" आदेश होते हैं जैसे- मुद्दहे, मुद्दहु । §7§ अधिकरण के एकवचन में "हि" आदेश [2] होता है; जैसे - मुद्दहि ।§8§ अधिकरण के बहुचन में "हि" विभक्ति लगती है, जैसे- मुद्दहिं ।

इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त और ऊकारान्त वाले स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों, जैसे मति, तरूणी, धेनु वधू आदि के रूप भी "मुद्दा" के रूपों के समान होते हैं ।

ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा के रूप

आकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के अन्त्य"आ" को अपभ्रंश में ह्रस्व कर दिया जाता है। इनमें कभी-कभी "ई" भी रहता है; जैसे बाली, विलासि, बसुंधरी, परमेसरी । ऐसे विशेषणों के स्त्रीलिंग रूपों में भी "ई" लगाने की प्रक्रिया है। स्त्रीलिंग इकारान्त संज्ञा रूपों और ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा के रूपों में कोई अन्तर नहीं है। अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द तो संस्कृत में भी कम है । अपभ्रंश मे बहु, बहुहिं, महु, महुइं, प्रभृति कुछ शब्द मिल जाते हैं । आकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञा रूपों के ही समान ईकारान्त स्त्रीलिं संज्ञा के रूप भी होते हैं ।

1- "भ्यसामोर्हु , - सि0है0 8/4/351

2- "ङहिं , - सि0 है0 8/4/352

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	तरूणि	तरंगिणीउ
	रिद्वि	णारिउ
	भडारी	कुमारिउं
द्वितीया	महि	जणदिठ्ठिउ
	अवक्खडि	गाहिणीउ
तृतीया	घरिणीए	विरहंतिहि
	विलासिणीआए	
पंचमी	तरूणिहे	तरूणिहु
चतुर्थी -षष्ठी	महुएविहे	
	पुत्तिहिं	पाणियहारिहु
	भूमिहिं	
सप्तमी	पहरंतिहि	
	मुद्दिए	
	सिद्धिहि	वाविंहि
	रयणिहे	कामिणिहिं
	तुंगिहे	
सम्बोधन	माइ	
	पंचालि	(तरूणिहों)

स्त्रीलिंग संज्ञा के विभक्ति चिन्हों को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है - {0} चिन्ह विभक्ति लोप का बोधक है } -

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	0	0, उ, ओ
कर्म	0	0, उ, ओ
करण	ए	हिं
अपादान	हे	हु
सम्बन्ध	हे	हु
अधिकरण	हि	हिं
सम्बोधन	0	0, हों

निर्दिष्ट शब्द रूपों के आधार पर उनके सम्पूर्ण विभक्ति रूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

परसर्ग -

"अपभ्रंश कारक विभक्तियों का अध्ययन करते समय कुछ ऐसे स्वतन्त्र शब्द मिलते हैं जो संज्ञा के साथ प्रत्यय की भाँति जुड़े नहीं होते, फिर भी वे कार्य करते हैं - किसी कारक विभक्ति का ही[1]। संस्कृत, पालि,

---

1- डॉ० नामवरसिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० 107, 114, 15

और प्राकृतों में परसर्गों का उपयोग बहुत कम था । उपरि, मध्ये, कृते जैसे शब्द (कूपोपरि, अर्थस्य कृते आदि) और पालि में सन्तिके (गोतमस्य सन्तिके) जैसे शब्द इसी प्रकार के हैं । अपभ्रंश में विभक्तियों के क्षीण होने से परसर्गों का उपयोग बढ़ गया । आ० भा० आ० विशेषत: हिन्दी में कारक विभक्तियों का स्थान परसर्गों ने ले लिया । अपभ्रंश में सम्बन्ध कारक में परसर्गों का सर्वाधिक उपयोग किया गया है । केर, केरअ, कर, का, को आदि का प्रयोग सम्बन्ध सूचनार्थ बहुत किया गया है । अधिकरण मे माँझ, मज्झे, मज्झु , मज्झ का प्रयोग अधिक हुआ है। सम्प्रदान में केहि , रेसि, तण परसर्गों का प्रयोग मिलता है । अपादान मे होन्तउ का प्रयोग द्रष्टव्य है । इन परसर्गों का प्रयोग संज्ञा शब्दों के साथ अधिक हुआ है । डा० नामवरसिंह ने संभावना की है कि इससे परसर्गों के आविर्भाव का कारण मालूम होता है। संज्ञा शब्दों की अपेक्षा सर्वनामों में ध्वनि- परिवर्तन अत्यधिक दिखाई पड़ता है । अनेक सर्वनाम तो इतने घिस गये हैं कि उनके तत्सम रूप से उनका सम्बन्ध स्थापित करना कठिन हो गया है। इस घिसाई में सर्वनामों से संलग्न विभक्तियों का रूप परिवर्तन स्वाभाविक है। ऐसी दशा में बहुत संभव है क्षतिपूर्ति के लिए लोगों ने नये वाचक शब्दों की आवश्यकता अनुभव की होगी और फिर यथास्थान उनका उपयोग भी किया होगा। अस्तु विभक्ति -चिन्हों की असमर्थता में ही परसर्गों का आगमन संभव है। परसर्गों में ध्वनि- परिवर्तन हुआ है । इसलिए अनेक परसर्गों की व्युत्पत्ति संदेहास्पद बनी हुई है। ज्यूल ब्लाख

का मत है कि परसर्गों में अत्यधिक ध्वनि- परिवर्तन होने का मुख्य कारण यह है कि सहायक शब्दों के रूप में प्रयुक्त होने के कारण इन्हें प्रयत्न लाघव का शिकार अधिक होना पड़ता है। मुख्य शब्द झटके के साथ उच्चारित होता है तो उस स्वरपात का प्रभाव परवर्ती परसर्ग पर भी पड़ता है। फलतः यह परसर्ग धीरे-धीरे मुख्य शब्द का ही एक अक्षर बन जाताहै। मैथिली परसर्ग के इस नियम का ज्वलन्त उदाहरण है। अपभ्रंश का रामकेर घिसते- घिसते राम क- हुआ अन्त में रामक हो गया। इसलिए अधिकांश परसर्ग सर्वनामों के साथ अभिन्न रूप में जुड़कर उनके अंग हो गये, लेकिन संज्ञा शब्दों के साथ उनकी अभिन्नता स्थापित न हो सकी। इसका एक ही कारण संभव हो सकता है। सर्वनाम प्रायः एकाक्षरिक होते है इसलिए उनके साथ एक और अक्षर के रूप में परसर्ग का जुड़ जाना स्वाभाविक हैं। लेकिन संज्ञा शब्दों के लिए यह बात नहीं कही जा सकती। अनेक संज्ञा शब्द एकाधिक अक्षरों के होते हैं। इसलिए उनके स्वरपात के प्रभाव में परसर्ग प्रायः नहीं आते। वस्तुतः स्वरपात की दृष्टि से परसर्ग बड़े संज्ञा शब्दों से भिन्न ही रहते हैं।

करण परसर्ग -

सउँ, समउ, समाणु, सहु, सओं, सरिस सउँ - सउँ का सम्बन्ध संस्कृत सह से स्पष्ट है। डॉ० नामवरसिंह[1] का विचार है कि अपभ्रंश में करण कारक में प्रायः विभक्ति प्रत्यय का ही प्रयोग होता था,

1- डॉ० नामवरसिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० 158

उसके स्थान पर परसर्ग की आवश्यकता बाद में अनुभव कीगयी । परन्तु सह की अपेक्षा यह ॥ सउँ ॥ "समम् " के अधिक निकट है सउँ < सवँ < समम् भविसयत्तकहा में सउँ और सउ ॥ सानुनासिक और निरनुनासिक॥ दोनों का प्रयोग उपलब्ध है ।

समउ < समकम् - "पिवतेण समउ । "

समाणु < समान ॥ सि0हे0 8/4/418॥ हेमचन्द्र ने समम् को समाणु आदेश बताया है - "तेण समाणु "

सहुँ < सह - सहुं के सानुनासिक और निरनुनासिक दोनों प्रयोग मिलते हैं ।

"सहु सुमसालि, "जसु पवसन्ते सहुँ न गय ।"

सञों - सओं < सवं < समम् । कीर्तिलता और वर्ण रत्नाकर में सञों रूप मिलता है ।

- मानिनि जीवन मानसञों वीर पुरिस अवतार॥

॥कीर्तिलता॥

मृत्यु सञों कलकल करइतेंअछ ॥वर्णरत्नाकर॥ सञों के साथ ही सनो और से का प्रयोग भी कीर्तिलता में हुआ है ।

सरिस < सदृश । भविसयत्तकहा, संदेश रासक में इसके अनेक प्रयोग हैं ।

सम्प्रदान परसर्ग -

केहिं, किहँ, तेहिं, तणेण , तण, तणइ लागि । केहिं < कृते

- हिन्दी (अवधी) के कहुँ , कहँ, केहँ का सम्बन्ध संस्कृत "कथ" से जोड़ा जाता है । पर इसे सर्वनाम किम् की अपभ्रंश प्रकृति क के कारण के रूप कें + हिं < केन + हि से बना हुआ मानना चाहिये । "हउँ झिज्जउँ तउकेहिँ "।

किहँ -

सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने किह् < किअ < कृत या संभावित अधिकरण रूप किअ + हिं < किहइँ < किट से सम्पन्न माना है । पर यह "किं" का ही रूप है । - कथं = किह (सि0 हे0 8/4/425) और तादर्थ्य प्रयुक्त है ।

तेहिं -

तत् से बना हुआ तें+हिं < तेन + हि । रेसि, रेसिं देसी परसर्ग या निपात प्रतीत होते हैं । तुँहु पुणु अन्नहिं रेसि ।

तण, तणेण -

अपभ्रंश में तण का प्रयोग करण, सम्प्रदान और सम्बन्ध तीनों कारकों में मिलता है -

केहि तणेण, तेहि तणेण (करण)

बहुत्तणहों तणेण (सम्प्रदान)

अम्हहँ तणा (सम्बन्ध)

कर - कृते - वर्णिऐं कर धणु - कर अपभ्रंश ✓ कइ का पूर्वकालिक रूप है ।

सम्प्रदान में परसर्ग बन गया है।

कज्जें < कार्ये = कृते , कज्जेण < कार्येण = कृते तादर्थ्ये

सम्प्रदान में प्रयुक्त है ।

लागि - लागि का प्रयोग परवर्ती अपभ्रंश के वर्ण रत्नाकर, कीर्तिलता आदि ग्रन्थों में मिलता है'जनि एहिं आलिंगए लागि' § वर्ण रत्नाकर§ , तेसरा लागि तोनूं उपेक्खिय§ कीर्तिलता §

लागि < लग्न ।

अधिकरण परसर्ग -

मज्झे, मांझ, उत्परि, परि, पर, वरि । उप्परि < उपरि < उवरि "सायरू उप्परि तणु धरइ । " रह वरि चडिअउ" § सि0 हे0§ सबे नअर उप्परि §कीर्तिलता§ ।

माझं < मज्झ < मज्झे < मध्ये §मज्झाम्मि§ ।

"जावहिं बिसमी कज्ज गइ जीवहिं मज्झे एइ ।

" तेन्हु मांझ ।" "युवराजन्हि मांझ पवित्र । "

अपादान परसर्ग -

होन्तउ, होन्त, होन्ति, हुतं, हुंति, लइ, पासिउँ, पास सौ, ठ्ठिव ।

होन्तउ ✓ भू + शतृ (वर्तमान कृदन्त) < हवन्त < भवन्तः का रूप है, अर्थ है होता हुआ या होते हुए पहले यह विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता रहा होगा, पर बाद में परसर्ग हो गया। "तुज्झ होन्तउ आगदो, " " तहाँ होन्तउ आगदो " (सि0 हे0 8/4/355 कीर्तिलता में इसका "हुन्ते रूप मिलता है - दुरू हुन्ते आ आ बड़ बड राआ। "

हुतं - होन्तउ का ह्रस्वीकृत रूप है- गाँव हुंत आव, ईहां हुंतगा।

(उक्ति व्यक्ति, प्रकरण)

हंति < हिं < अहन्त < सन्त (अस् - अन्त)

पासिउं < पाश्र्वात् - अण्णहिं पासिउ (भविसयन्त कहा)।

पास - पास्स < पार्श्व ओझापास बोदाले (उक्ति व्यक्ति प्रकरण)

तौ - उक्ति व्यक्ति प्रकरण में अम्हतौ, तुम्हतौ, तातौ जैसे अपादान के प्रयोग मिलते है। वस्तुतः < तउ < तौ = ततः यह सर्वनाम से हो है।

ठिव - अधिकरण के साथ ठिउ का प्रयोग अपादान का अर्थ देता है।

<u>सम्बन्ध परसर्ग</u> केर, केरअ, कर

केर - आचार्य हेमचन्द्र ने प्राकृत में " इदमर्थस्य केरः' (सि0 हे0 8/2/ 147) का नियम स्पष्ट किया है। अपभ्रंश में इस सम्बन्ध वाचक "केर" प्रत्यय ने परसर्ग का रूप ग्रहण कर लिया है। केर परसर्ग और इसके अन्य रूपों का अपभ्रंश बहुत प्रयोग हुआ। " सम्बन्धिनः केर - तणौ' (सि0 हे0 8/4/422) में इसी तथ्य को ओर इंगित किया

गया है । यह लिंग वचन कारक से भी प्रभावित होता है । केरउ § पुल्लिंग §, केरी §स्त्रीलिंग§ और केराइं §नपुंसकलिंग§ प्रयोग देखे जा सकते हैं ।

"जसु केरए हुंकारडएँ "लोचन केरा वल्लहा ।'

हिन्दी में भी का, के, की इसी के विकसित रूप है । "केर" का ही रूपान्तर 'कर' है । "वणिएँ कर पणुधर" §उक्ति व्यक्ति प्रकरण§

" तान्हि करी पुत्र" §कीर्तिलता§

क < कइ < करि < कर - " आस असवार कइ ।

क < कइ - "जुबतिन्हिक उत्कण्ठा' §वर्णरत्नाकर§;'शक्ति का परीक्षा §कीर्तिलता §

तण, तणेण, आदि अपभ्रंश में तण का प्रयोग करण, सम्प्रदान और सम्बन्ध तीनों कारकों में होताहै।"अह भग्गा, अम्हहं तणा" §सि0 हे0 8/4/369§ 'इम कुल तणउ' § सि0 हे0 8/4/361§ । तण भी लिंग , वचन, कारक से प्रभावित होता है । तणेण, तणय, तणउ, तणइ, तणा, तणिय, तणइं इसी के रूपान्तर है ।

आकारान्त , पुल्लिंग लड़का

	एक व0	ब0व0	प्रत्यय
मूल रूप	लड़का	लड़के	ए
वि0 रूप	लड़के	लड़कों	ओं

व्यंजनान्त पुल्लिंग घर्

मूल रूप	घर्	घर्	0
वि0रूप	घर्	घरों	ओं

व्यंजनान्त स्त्रीलिंग

किताब्	किताब्	किताबें	एं
वि0रूप	किताब्	किताबों	ओं

ईकारान्त स्त्रीलिंग

लड़की	लड़की	लड़कियाँ	आँ
वि0रूप	लड़की	लड़कियों	ओं

आकारान्त पुल्लिंग , "लड़का का मूल रूप बहुवचन प्रत्यय "ए" है और विकृत रूप एकवचन का भी प्रत्यय "ए" है किन्तु दोनों का इतिहास अलग- अलग है ।

कारक परसर्ग -

संज्ञा (सर्वनाम) के विकृत रूप में भिन्न-भिन्न परसर्ग जोड़कर अनेक अर्थ व्यक्त किये जाते हैं । हिन्दी व्याकरणिक पद्वति को जानने के लिए इन कारक परसर्गों का विशेष महत्व है।

ने - हिन्दी मे "ने" कर्त्ता का बोध होता है । जब सकर्मक क्रिया भूतकाल में होती है, तभी यह प्रत्यय लगाया जाताहै। यथा- राम ने किताब पढ़ी , लड़के ने परीक्षा दी । लाना, भूलना, बोलना सकर्मक क्रिया होने पर भी इनमें "ने" नहीं लगता । जबकि समझना, बकना अकर्मक होने पर भी इनमें "ने" प्रत्यय प्रयुक्त होता है "ने"प्रत्यय मानक हिन्दी की एक प्रमुख विशेषता है । हिन्दी की जनपदीय खड़ी बोली में "ने" प्रयुक्त होता है । हरियानी में "ने" कर्ता और कर्म दोनों में आता है ।

"ने" प्रत्यय को मानक हिन्दी की प्रकृति का अंग माना जाए अथवा नहीं यह प्रश्न उठता है; क्योंकि कुछ लोग यह समझते है कि "ने" केवल साहित्यिक मानक हिन्दी की विशेषता है,सामान्य जन इसका प्रयोग नहीं करते हैं । यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाए तो जिस भाषिक क्षेत्र (पूर्वी, पंजाब, मेरठ- क्षेत्र) की जनपदीय बोली को मूलाधार मानकर मानक हिन्दी का विकास हुआ है, वहाँ का सामान्य जन भी "ने" का प्रयोग करताहै । खड़ी बोली काव्य में भी 16वीं शती में "ने" का प्रयोग कर्ता के अर्थ में मिलता है । कर्म के अर्थ में तो गोरखनाथ (11वीं शती) में भी "ने" कर्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है फिर दिन - प्रतिदिन इसका प्रयोग और प्रसार बढ़ता ही गया । प्रणाली साहित्य में सैकड़ों बार "ने" का प्रयोग कर्ता के अर्थ में हुआ है । इस प्रकार लगभग 400 वर्षों से "ने" का प्रयोग मानक हिन्दी या मध्यकालीन हिन्दी या खड़ी बोली साहित्य में हो रहा है। सारे देश मे यह

प्रयोग खड़ी बोली काव्य में प्रचलित रहा है। अतएव देश-काल परिस्थिति की कसौटी पर मापने पर हमें यही कहना पड़ता है कि "ने" मानक हिन्दी की व्याकरणिक प्रकृति का अभिन्न अंग है ।

को - मानक हिन्दी में कर्म सम्प्रदान का द्योतक है किसी क्रिया के व्यापार का फल जिस पदार्थ पर आश्रित होता है, उसका जब "को" द्वारा बोध कराया जाता है, तब 'को' कर्मबोधक और जब किसी कार्य का उद्देश्य व्यक्त करता है या जिसके लिए कोई कार्य होता है, उस पदार्थ का बोध कराता है तब सम्प्रदान का परसर्ग कहलाता है ।

के लिए- सम्प्रदान का बोध कराने के 'लिए' एक संयुक्त परसर्ग का प्रचलन है । "के लिए" का प्रयोग हिन्दी में बहुत प्राचीन नहीं है। 18वीं शती (1741ई0) में प्रथम बार रामप्रसाद निरंजनी के 'योगवसिष्ठ" में इसका प्रयोग मिलता है । पहले इसी अर्थ में "वास्ते" शब्द का प्रयोग प्राचीन हिन्दी में होता था । सम्प्रदान के अर्थ में " के अर्थ", 'के प्रति,' "के लिए", "के वास्ते" आदि सम्बन्ध सूचक शब्द आते हैं और इनमें से 'के लिए' सबसे अधिक प्रयुक्त होता है । कर्म तथा सम्प्रदान के भेद को स्पष्ट करने के लिए " के लिए" का प्रचलन संयुक्त परसर्ग के रूप में बढ़ रहा है ।

से - करण तथा अपादान के अर्थ का द्योतन करने के लिए प्रयुक्त होता है। जब किसी साधन या कारण का बोध कराता है, तब करण तथा जब किसी का अलगाव, अन्तर, उत्पत्ति अवधि या तुलना का बोध कराता है तब अपादान

का परसर्ग कहा जाता है। कर्म वाच्य और भाव वाच्य में कर्ता का द्योतन करता है। अप्रत्यक्ष कर्म (कहना, पूछना, याचना, करना, माँगना, प्रार्थना) के व्यक्त करने पर भी "से" परसर्ग का प्रयोग होता है।

का- मानक हिन्दी में "का" सम्बन्ध कारक का परसर्ग है। इसका विकृत रूप "के" और स्त्रीलिंग "की" है। प्रमुखतः दो संज्ञा (सर्वनाम) में पारस्परिक सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। कभी-कभी जो चीज जिससे निर्मित होती है। (यथा- लोहे का अस्त्र) या जो किसी का स्त्रोत या मूल है (यथा- कालिदास के नाटक, अथवा किसी कार्य के कर्ता (नौकर का काम) पूर्ण का एक भाग (एक रोटी का टुकड़ा), उद्देश्य (पीने का पानी, तथा किसी के स्वभाव (माँ का प्यार) को व्यक्त करने के लिए इस परसर्ग का प्रयोग किया जाता है। जिस संज्ञा में "का" परसर्ग लगता है, वह बाद में आने वाले संज्ञा या सर्वनाम का आकारान्त विशेषण पद- सा बन जाता है। इसीलिए आकारान्त विशेषण की भाँति उसमें लिंग, वचन सम्बन्धी परिवर्तन भी होते हैं। मानक हिन्दी की किसी भी भाषा में एकवचन में सम्बन्ध कारकीय परसर्ग के रूप में "का" अन्य किसी में नही मिलता और इस परसर्ग को मानक हिन्दी की निजी विशेषता कहा जा सकता है। यह परसर्ग उसकी परसर्गीय प्रकृति का मुख्य तत्व है।

में - हिन्दी में प्रमुखतः किसी पर आधारित या निर्धारित वस्तु या रूप को व्यक्त करने के लिए संज्ञा (सर्वनाम) के बाद प्रयुक्त होता है। इसके

अतिरिक्त काल की अवधि (तीन दिनों में),किसी का मूल्य(आठ रूपये में),
पूरे वर्ग से तुलना (सब मे श्रेष्ठ) के लिए "में" का प्रयोग होता है।

पर- इसका प्रयोग किसी पदार्थ के ऊपर आधारित या निर्धारित
पदार्थ या वस्तु को प्रकट करता है इसी प्रकार ठीक समय (10 बजने पर),
घटना क्रम (वहाँ जाने पर),कारण (काम न करने पर नौकर को निकाला
गया), संयुक्त क्रिया (संज्ञा विशेषण से बनी) के कर्म को प्रकट करने के लिए
(मनुष्यों तथा पशुओं पर दया करो) पर का प्रयोग होता है ।

इस प्रकार अधिकरण में मानक हिन्दी के परसर्ग कई भाषाओं और
उपभाषाओं में मिलते हैं । संबोधन कारक काकोई परसर्ग नहीं है, किन्तु
संबोधन में संज्ञापद के विकृत रूप के पूर्व "हे, ओ, अरे, ए, ऐ," आदि विस्मयादि-
सूचक अव्यय लगा दिये जाते है ! प्राय: सभी उपभाषाओं तथा बोलियों में यही
लगते हैं । इन कारक परसर्गों के अतिरिक्त पचासों संबंध सूचक पद (अव्यय) हैं
जो कारक परसर्गवत् प्रयुक्त होते हैं । ये पद सम्बन्ध कारकीय विकारी प्रत्यय
"के" के बाद जोड़ जाते है । यथा-

करण- अपादान - मेरे साथ, द्वारा, सहित ।

कर्म- सम्प्रदान - खातिर, वास्ते, प्रति, लिए ।

अधिकरण - भीतर ,बीच, ऊपर, अंदर, आगे, नीचे,पास,
पीछे, बाहर ।

मानक हिन्दी में आजकल दो- दो कारक परसर्ग भी जोड़ने की एक साहित्यिक शैली, प्रचलित हो गयी है। यथा- मेरे घर में से, मेज पर से आदि ।

मानक हिन्दी में नही संस्कृत-बहुली शैली में संस्कृत कारकीय प्रत्ययों के साथ संज्ञापद प्रयुक्त होते हैं । यथा- प्रचंडतया, पदेन, विशेषतया, प्रायेण, आदि ; किन्तु ये प्रयोग विरल है ।

अपभ्रंश और हिन्दी कारक चिन्ह या परसर्ग की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन ।

संज्ञा की व्याकरणिक कोटियों में कारक की व्याकरणिक कोटि हिन्दी और अपभ्रंश दोनों में महत्वपूर्ण है अपभ्रंश में कारक विभक्तियाँ अधिकांशत: संयोगात्मक है कहीं- कहीं वियोगात्मक है जबकि हिन्दी में कारक चिन्ह, कारक, परसर्ग अथवा कारक विभक्ति अधिकांशत: वियोगात्मक है कहीं- कहीं ही संयोगात्मक है । हिन्दी के प्रमुख कारक चिन्ह "ने" (कर्त्ता) "को" (कर्म) "से" (करण) "को; 'के लिए" (सम्प्रदान) "से" (अपादान), "का", 'के,' "की" (सम्बन्ध) में "पर" (अधिकरण) आदि प्रमुख कारक विभक्तियाँ है । यह कारक परसर्ग अधिकांशत: अपभ्रंश के कारक विभक्तियों के विकसित रूप हैं।

हिन्दी कारक विभक्ति "ने" अपभ्रंश विभक्ति 'नइँ < नइ 'अथवा 'तणइ' से विकसित है। इस "ने" का विकास भी तृतीया विभक्ति के रूप से माना जाता है; जैसे तृतीया विभक्ति का एक रूप है-"एन" यथा- 'देवेन" । विद्वानों का मत है कि ध्वनि विपर्यय द्वारा "एन" ही "ने" हो गया किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन हिन्दी के ध्वनि परिवर्तनों के अनुकूल नहीं बैठता है। उक्त "ने" का विकास "ले" से भी माना जाता है लग्य< लग्गिओ < लगि-< लइ < ले, ने ।

कर्म "को" विभक्ति की अपभ्रंश "कउ" से सम्बन्धित है ।

इसी प्रकार सम्प्रदान "के लिए" विभक्ति अपभ्रंश के लग्गइ < लग्गइ से विकसित हुई है। करण और अपादान " से" की विभक्ति अपभ्रंश की सतु< सतो < सतउ से सम्बन्धित है। डॉ0 उदय नारायण तिवारी इसका विकास सम - एन से मानते हैं - सम - एन < सएँ , सईं < सें < से ।

सम्बन्ध "का" "के" 'की' विभक्ति का सम्बन्ध अपभ्रंश की केर < केरअ-कर से है। केरउ पुल्लिंग में और केराइं नपुंसकलिंग में तथा केरी का स्त्रीलिंग में रूप है और के का विकृत रूप ।

अधिकरण "में" का सम्बन्ध अपभ्रंश की "मइ" तथा पर का सम्बन्ध अपभ्रंश में उपरि < परि से है । हिन्दी में "मुझे, 'हमें' संयोगात्मक कारक विभक्ति है । "मुझे " का सम्बन्ध "मुज्झे" से "हमें" का सम्बन्ध "हम्इ" से है ।

इस प्रकार अपभ्रंश और हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की कारक विभक्तियों का सम्बन्ध सीधा अपभ्रंश की कारक विभक्तियों से है ।

चौथा - अध्याय

सर्वनाम

चौथा- अध्याय

अपभ्रंश में सर्वनाम

हेम चन्द्र ने अपभ्रंश में सर्वनाम का विवेचन करते हुए पाणिनि के "सर्वादीनि सर्वनामानि" §1/1/27§ को दृष्टिपथ रखते हुए सर्वादेर्ङे सेर्हं §8/4/355§ सूत्र लिखा था ।

पाणिनि के सर्वादिगण को प्राकृत के वैयाकरणों ने सर्वनाम-संज्ञा का आधार बनाया था तथा हेमचन्द्र नेअपने शब्दानुशासनम् के अपभ्रंश प्रकरण में सर्वादि का ही स्मरण किया था । संस्कृत में पच्चीस सर्वनाम थे परन्तु अपभ्रंश मे उनकी संख्या घट गई तथा किम्, यत्, तत्, इदम्, एतद्, अदस्, सर्व, युष्मद्, अस्मद् के अपभ्रंश रूप ही प्रमुख रह गये । मुख्यतः 9 सर्वनामों के प्रयोग से अपभ्रंश भाषा का समस्त व्यवहार चलता है ।

वर्गीकरण -

अपभ्रंश भाषा के सर्वनामों को निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जाता है ।

§1§ पुरूष वाचक सर्वनाम

हउं, तुहुं, सो । ये क्रमशः अस्मद्, युष्मद् और तत् के स्थानीय हैं ।

§2§ निश्चयवाचक सर्वनाम

आय, एह §एअ§, ओइ । ये क्रमशः इदम्, एतद् तथा अदस् के स्थानीय हैं ।

§3§ सम्बन्धवाचक सर्वनाम

जो, सो । ये क्रमश यः §यत्§ तथा सः §तत्§ के स्थानीय हैं ।

§4§ प्रश्नवाचक सर्वनाम

कवण, कांइ, यह कः किम् केस्थानपर प्रयुक्त होता है।

§5§ अनिश्चय वाचक

कोवि । यह कोडपि के स्थान पर है ।

§6§ निजवाचक सर्वनाम

अप्प । यह आत्मन् से बना है ।

§7§ अन्य प्रयोग -विविध सर्वनाम

अण्णु, इयर । ये शब्द भी सर्वनाम के रूप में प्रयुक्त होते हैं । इनकी रचना क्रमशः अन्यत् तथा इतर से हुई है ।

<u>पुरूषवाचक सर्वनाम</u> -

प्राकृत में द्विवचन को समाप्ति के कारण कारकीय रूपों में कमी तो आयी किन्तु अनेक बोलियों में प्रचलित रूपों को समाहित करने के कारण रूपों की वैकल्पिकता अभूतपूर्व ढंग से बढ़ गयी.। संस्कृत रूपों को एकवचन की प्रकृति

तथा बहुवचन की प्रकृति का प्राकृत में अदान- प्रदान भी हुआ । प्राकृत में एक ही कारक तथा वचन में एकाधिक रूपों का प्रचलन एक जटिल समस्या था । कर्म बहुवचन में सबसे कम चार वैकल्पिक रूप थे । अम्हे, अम्हो, अम्ह, णे § और अपादान एकवचन में सर्वाधिक छब्बीस वैकल्पिक प्रयोग थे § मइ, मम, मह, मज्झ, मईहिंतो, मइत्तो, मईओ, मईउ, ममाहिंतो, ममतो, ममाओ, ममाउ, ममा, ममाहि, महाहिंतो, महत्तो, महाओ, महाउ, महा, महाहि, मज्झहिंतो, मज्झतो, मज्झओ, मज्झाउ, मज्झा, मज्झाहि ।

अपभ्रंश में इस वैकल्पिकता को कम किया गया जिससे रूपों में सरलता आ गयी । रूप रचना की मूल प्रकृति प्राकृत के समान ही है।

इसके भी तीन भेद हैं - उत्तम पुरूष, मध्यम पुरूष तथा अन्य पुरूष सर्वनाम ।

उत्तम पुरूष सर्वनाम -

संस्कृत में इस सर्वनाम का "अस्मद्" रूप था । प्राकृत में यह "अम्ह" हो गया । और अपभ्रंश में "हउं" बना तथा बहुवचन में "अम्ह" के रूप में शेष रहा । इस सर्वनाम के एकवचन तथा बहुवचन में निम्नांकित रूप बनते हैं -

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	हउं, हउ	अम्हे, अम्हइं
कर्म	मइं	अम्हे, अम्हइं
करण	मइं	अम्हेहिं, अम्हेहि

अपादान	महु, मज्झु	अम्हहं
सम्बन्ध	महु, मज्झु	अम्हहँ
अधिकरण	मइं	अम्हासु

इस प्रकार अपभ्रंश में पुरूष वाचक सर्वनाम के रूप बहुत सरल तथा संस्कृत और प्राकृत की तुलना में कम हैं ।

<u>मध्य पुरूष सर्वनाम -</u>

युष्मद् (तुहुं) का प्राचीन भा० आ० भाषा में एक वचन की प्रकृति "त्व" है और बहुवचन की युष्म । प्राकृत में त्व का तु विकार है युष्म का विकार तुम्ह है ध्वनि - परिवर्तन की जो प्रक्रिया मध्यकालीन आ० भाषाओं में परिलक्षित है उसके अनुसार य का रूपान्तर त में असम्भव है । तु के सादृश्य पर तुम्ह रूप बन सकता है। पिशेल ने प्राचीन रूप तुम की कल्पना की है अपभ्रंश मे त या तु के स्थान पर य के प्रयोग की परम्परा दृष्टव्य है। आलोच्य भाषा में कर्ता एकवचन में अधिकांशतः तुंहु का व्यवहार हुआ है। तुहं की रचना प्रक्रिया लगभग वैसी ही है जैसी हउं की ।

संस्कृत के "युष्मत् "रूप से अपभ्रंश में प्राकृत होता हुआ जो मध्यम पुरूष रूप आया, वह "तुहुं या "तु" है इसके दोनों वचनों तथा कारकों में निम्नांकित रूप बनते हैं ।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	तुहुं	तुम्हे, तुम्हइ
कर्म	तइं, पइं	" "
करण	" "	तुम्हेहिं
अपादान	तउ, तुज्झ, तुध्र	तुम्हहं
सम्बन्ध	"	"
अधिकरण	तइं, पइं	तुम्हासु

स्पष्ट है कि अपभ्रंश मे मध्यम पुरूष सर्वनाम के रूप भी बहुत सरल तथा संक्षिप्त हो गए हैं । तइं के साथ पइं रूप का निर्माण आगे चलकर आधुनिक आर्य भाषा की बोलियों में "आप" के विकास की परम्परा भी बनता है ।

<u>प्रथम पुरूष या अन्य पुरूष</u> -

उत्तम पुरूष (हउँ) तथा मध्यम पुरूष (तुहुं) के अलावा जितने भी सर्वनाम हैं उनकी परिगणना अन्य पुरूष या प्रथम पुरूष में की जाती है । प्रा० भा० आर्य भाषाओं में प्रथम पुरूष के सार्वनामिक रूपों में लिंग भेद भी व्यातव्य था । अपभ्रंश में सरलीकरण के कारण लिंगो का भेद कुछ शिथिल हो गया । अपभ्रंश साहित्य तथा व्याकरण में स्त्रीलिंग का प्रयोग अत्यल्प है विभक्तियों के बहुवचन सूचक रूपों को बड़ी कठिनाई से ढूंढा जा सकता है । पुरूषवाची अन्य पुरूष के सर्वनामों की रचना पद्धति में परम्परा का अनुसरण अधिक है । इनमें ध्वनि परिवर्तन भी प्रायः नहीं हुआ है। रूपों में वैकल्पिकता भी हउं और तुहुं की अपेक्षा।

कुछ अधिक है। वचन भेद तथा लिंग भेद की शिथिलता के कारण रूपों में साम्य दिखाई देता है। सो (तद्) पुल्लिंग का रूप इस प्रकार है।

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सो, सु, से	ते
कर्म	तं	ते, ति
करण	तेण, तइं, तें, ति	तेहिं
अपादान	तहां तो, ता	तहुं
सम्बन्ध	तहो, तहु, तसु	ताहं, तहं
अधिकरण	तहि,	तहिं, तेसु

स्त्रीलिंग

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सा, स	ताउ, ति
कर्म	तं	ताउ
करण	ताइं, ताएं, तोए	तेहिं
अपादान, सम्बन्ध	– ताहं, तिहि, तहि, तहे	तांहिं
अधिकरण	तहिं, तिह	तांहिं

नपुंसक लिंग में कर्ता – कर्म तं, नु – ताइं के अलावा शेष पुल्लिंग की तरह रूप बनते हैं।

निश्चयवाचक सर्वनाम -

यह सर्वनाम तीन रूपों में मिलता है। संस्कृत के "इदम्" से बना, "आय", एतद् से बना " प्राय", एतद से बना एह तथा अदस् से बना ओइ । यहाँ इन तीनों के अपभ्रंश भाषा में बनने वाले रूप इस प्रकार हैं -

"आय" के रूप

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता, कर्म	आउ, आओ, आअ	आआ, आए
	आइउ, आयउ	
करण	आएण	
	(स्त्रीलिंग -आयएं, आयहि) आयहिं आयएहिं	
अपादान तथा सम्बन्ध	आयहो	
	स्त्रीलिंग में, आआ	आयइं

" एह" या "एह" के रूप

कर्ता, कर्म	एहो, एहु	ए, इय
	(स्त्री० एह, एय)	
करण	एण	एयहिं, एय
सम्बन्ध	एयहो	एयहं
	(स्त्री० एयहिं)	

ओइ के रूप

बहुत कम प्रयुक्त मिलते हैं। हेमचंद्र ने अपवाद स्वरूप इसका उदाहरण दिया है।

"बड्डा घर ओइ"। प्राकृत में "अदस का "अमु" रूप बनता है, जिससे यह अपभ्रंश "ओइ, रूप माना गया है। कर्ता और कर्म कारक में ही इस "ओइ", के बहुवचन के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं, जिनके आधार पर ही हेमचंद्र ने इसका सूत्र जोड़ दिया है।

निश्चयवाचक सर्वनाम का "आय" रूप सामीप्यबोधक है तथा एह (एअ) भी सामीप्य का ही बोध कराता है, किन्तु "ओइ" दूरत्व बोधक है।

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम -

संस्कृत के यत् और तत् सर्वनामों से बने "जो" तथा "सो" अपभ्रंश के सम्बन्ध वाचक सर्वनाम हैं। इन दोनों के रूप समान नियम से बनते हैं। "जो" के रूप इस प्रकार होते हैं।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता, कर्म -	जो, जु, जं,	जे, णि
	धुं, द्रुं तथा जे	
करण -	जेण, जिणि, जिण	जेहिं, जिहि, जहि
	जे, जिं,	
अपादान -	जहाँ, जा	जहुं

सम्बन्ध -	जासु, जसु	जाहं
	तथा स्त्रीलिंग में, "जहे" जहं, जाण	
अधिकरण -	जहिं, जहि, जम्मि	

स्त्रीलिंग में "जो" के रूप कर्ता कारक में "जा" करण में "जाएं" सम्बन्ध मे "जहे " एक वचन में तथा करण बहुवचन में "जाउ", सम्बन्ध बहुवचन में जहि" प्रयोग भी मिल जाते हैं । जैसे

जो (< यत्) - स्त्रीलिंग

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	जा	जाउ
कर्म	जं	जाउ
करण	जाइ, जाएँ, जिए	जेहिं
अपादान	जहि	जाहिं
सम्बन्ध	जाहि	जाहिं
अधिकरण -	जाहि	जाहिं

जो (< यत्) - नपुंसकलिंग

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	जं, धुं	जाइं
कर्म	जं जु	जाइ

शेष रूप पुल्लिंग के समान होते हैं ।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

इस सर्वनाम को अपभ्रंश में मूल प्रकृति "क" है । "काइं" का प्रयोग भी मिलता है; किन्तु यह नपुंसकलिंग का रूप है। इसके प्रयोग में विभक्ति और वचन का प्रतिबन्ध नहीं है । एक तीसरा रूप "कवण" है जो संस्कृत के "कः पुनः" से बना है । यहाँ "क" के रूप दिए जा रहे हैं -

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता, कर्म	को	किवि,
	कवण	कवणु
	कोवि	
	कुइ	
	काह	
करण	कइं	केहि, केहिं
	केण	
	कवणें	
आपादान	किहे	
सम्बन्ध	कासु	
	कहो	
	कहु	
	काह	
अधिकरण	कहिं	

स्त्रीलिंग में कर्ता - कर्म में "का" करण में काए और काइं सम्बन्ध में काहे, कहे, कारिह तथा कहि रूप बनते हैं ।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

अपभ्रंश के ये सर्वनाम पि, पि, मि, इ < सं0 अपि; चि < सं0 चित् लगाकर बनाये जाते हैं ।

किं और काइं अव्यय की भांति भी प्रयुक्त होते हैं । "णिसिअरू कोइ हरेइ " में प्रयुक्त कोई < कोवि < कोपि का रूप है । प्रश्न वाचक क प्रकृति से ये शब्द स्पष्ट हो जाते हैं । कोई, किछु, कोवि आदि शब्द मिलते हैं । इनके अन्य रूप नहीं बनते ।

निजवाचक सर्वनाम

संस्कृत के आत्मन्, से अपभ्रंश में "अप्प" निजवाचक सर्वनाम बनता है । अप्पा, अप्पण, अप्पणु, अप्पाणु, अप्पउं इत्यादि रूपों में भी इसका प्रयोग मिलता है । इनके रूप अकारान्त संज्ञा रूपों के समान बनते हैं -कारकों में इसकी रूपावली इस प्रकार है ।

कर्ता कर्म - अप्प, अप्पु, अप्पउ, अप्पय, अप्पणय, ये सब एकवचन के रूप हैं ।

स्त्रीलिंग में "अप्पणीय" रूप मिलता है ।

करण- अप्पाए, अप्पुणु, अप्पहि, अप्पें, अप्पिं ।

सम्बन्ध - अप्पाण, अप्पणु, अप्पह, अप्पहो, अप्पहु ।

अधिकरण- अप्पें, अप्पि ।

विविध सर्वनाम

यहाँ तक जिन सर्वनामों की चर्चा की है, उनके अतिरिक्त भी कुछ सर्वनाम मिलते हैं, जिन्हें विविध सर्वनाम के वर्ग में डालकर यहाँ उनका परिचय प्रस्तुत किया जाता है ।

विविध, सर्वनाम के अन्तर्गत मुख्य शब्द" सव्व" है, जो संस्कृत में " सर्व" से बना है । इसके रूप यहाँ प्रस्तुत हैं कर्ता-कर्म में एकवचन - बहुवचन की मर्यादा नहीं है । रूपों की वैकल्पिकता प्रत्येक विभक्ति में अधिक है।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सव्वु, सव्वो, सव्व, सव्वा, सव	सव्वे, सव्व, सव्वा
कर्म	सव्वु, सव्वे, सव्व, सव्वा	सव्वे, सव्वि, सव्वा,
करण	सव्वेण, सव्वे, सव्वे	सव्वेहिं, सव्वाहि सव्वहिं, सव्वे
अपादान	सव्वहं सव्वाहं	सव्वहुं, सवाहु
सम्बन्ध	सव्वसु, सव्वासु	सव्वेंसि
	सव्वसुं सुव्वहो	सव्वह
	सव्वाहो, सव्व, सव्वा	सव्व सव्वा
अधिकरण	सव्वहिं, सव्वाहिं	सव्वहि,
		सव्वोहिं,
		सव्वासु
		सव्वसु

अपभ्रंश के एकल या सर्व से निष्पन्न " साह" सर्वनाम भी माना जाता है, किन्तु इसका प्रयोग बहुत कम मिलता है। एक शब्द "अण्ण" भी है, जो "अन्य" से उत्पन्न है। इस सर्वनाम के रूप इस प्रकार बनते हैं -

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता, कर्म	अण्ण, अण्णु	×
करण	अण्णें	अण्णाहि
सम्बन्ध	अण्णह	
अधिकरण	अण्णहिं (अ०क०)	

संस्कृत "इतर" शब्द शब्द से अपभ्रंश में "इयर" बनता है प्रा० भा० आ० का इतर म० भा० आ० का इयर ही अपभ्रंश में प्रकृति है। अकारान्त सर्वनाम की तरह शब्द रूप चलते हैं। इसका रूप पुल्लिंग एक वचन कर्ता, कर्म, में इयर तथा स्त्रीलिंग एकवचन में भी इयर किन्तु बहुवचन स्त्रीलिंग में "इयरे" बनता है।

इस प्रकार हम देखते है कि अपभ्रंश में सर्वनामों के रूप अधिक जटिल नहीं है।

हिन्दी में सर्वनाम -

संज्ञा के बदले जो पद प्रयुक्त होते हैं, उन्हें सर्वनाम कहा जाता है। सर्वनाम प्रतिनिधि पद है। आचार्य कामता प्रसाद गुरू के अनुसार सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं जो संज्ञा के बदले में आता है। संज्ञा के समान मानक हिन्दी के सार्वनामिक पदों में लिंग सम्बन्धी परिवर्तन नही होता, किन्तु वचन और कारक सम्बन्धी रूपान्तर संज्ञा की भांति ही होता है। अर्थ की दृष्टि से हिन्दी के सर्वनामों को निम्नलिखित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। संज्ञा की भाँति सर्वनाम में भी दो कारक (रूप) मिलते हैं -

(1) मूल रूप (2) विकृत रूप

(1) पुरूष वाचक - मूल - मैं, हम, तू, तुम, आप, वह वे।

विकृत - मुझ, हम, तुझ, तुम, आप, उस, उन, उसे, उन्हें, उन्हों (मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा।

(2) निश्चयवाचक - (निकटवर्ती)

मूल - यह, ये ।

विकृत - इस, इन (इसे, इन्हें) ।

(दूरवर्ती)

मूल - वह, वे ।

विकृत - उस, उन (उसे, उन्हें) ।

(3) अनिश्चयवाचक - मूल - कोई, कुछ;

किसी, किन्हीं ।

§4§ प्रश्नवाचक - कौन, क्या;

किस, किन §किसे, किन्हें § ।

§5§ संबंधवाचक- जो, जो

जिस, जिन § जिसे, जिन्हें § ।

§6§ निजवाचक - आप, अपना ।

मानक हिन्दी में दो दो सर्वनाम संयुक्त करके बोलने की प्रथा बढ़ती जा रही है ।

सर्वनाम द्वित्व - जो-जो, कौन-कौन, कुछ- कुछ, आप ही आप, आप से आप, क्या- क्या , और -और ।

अन्य सर्वनाम - जो कोई, कोई न कोई, बहुत कुछ, कोई सा, जो कुछ, सब कोई, कुछ न कुछ, कोई और, और कोई, कोई दूसरा , कुछ और, और कुछ, कोई सा, कौन-सा ।

सर्वनाम + "हि" - इसी § इस + ही§, यही यह + ही § आदि ।

हिन्दी में आदरार्थ बहुवचन का प्रयोग सर्वनामों में विशेष बढ़ता जा रहा है । अतएव वास्तविक बहुवचन का बोध कराने के लिए- लोग §मूल-रूप§ लोगों §वि० रूप०§ को मुख्य सर्वनाम पद के साथ जोड़ने की प्रथा बढ़ती जा रही है । यथा -

मूल रूप - तुम लोग, वे लोग, कौन लोग आदि ।

विकृत रूप- तुम लोगों, हम लोगों, किन्ही लोगों आदि ।

" लोग" की भाँति सभी सर्वनामों के साथ वास्तविक बहुवचन काबोध कराने के लिए " सब" शब्द भी जोड़ा जाता है यथा- ये सब, इन सबों, वे सब, उन सबों ।

मानक हिन्दी में प्राचीन अकारान्त पद अब व्यंजनान्त हो गये हैं, अतएव सर्वनाम के बाद परसर्गों को लगाकर जब हिन्दी वक्ता बोलता है तब मूल सर्वनाम और परसर्ग के बीच में विवृति मूल संज्ञापद और परसर्ग की अपेक्षा कम होती है । अतएव हिन्दी में ऐसी परम्परा है कि सर्वनाम के साथ अधिकांश कारक परसर्गों को मिलाकर बोलते हैं और लिखते भी हैं । यथा- उसने , उसके, मैंने, मुझको, तुझको आदि ।

सार्वनामिक विशेषण -

वाक्यात्मक अथवा अर्थ की दृष्टि से सर्वनामों से निर्मित सार्वनामिक विशेषण , विशेषण है, किन्तु रूप रचना की दृष्टि से इनका निर्माण सार्वनामिक पदों से होता है । अतएव सर्वनामों के साथ ही सार्वनामिक विशेषण का भी विचार किया जाता है । सार्वनामिक विशेषण दो प्रकार के हैं । §1§ मूल §2§ व्युत्पन्न ।

जब निश्चय, अनिश्चय, संबंध , प्रश्नवाचक, सर्वनामों के मूल रूपों के बाद संज्ञापद आता है तब अर्थ की दृष्टि से ये पद सार्वनामिक विशेषण हो जाते हैं । इन्हें मूल सार्वनामिक विशेषण कहा जा सकता है यह लड़का , ये आदमी, कौन पुरूष , में 'यह' "ये" मूल सार्वनामिक विशेषण है मूल सर्वनाम - यह, वह, जो, कौन आदि ।

§2§ व्युत्पन्न सार्वनामिक विशेषण वे सर्वनाम है जो कुछ प्रत्यय लगाकर बनाये जाते है।मानक हिन्दी में ये दो प्रकार के हैं ।

§1§ गुणवाचक - ऐसा, वैसा, जैसा, कैसा ।

§2§ परिणामवाचक - इतना, उतना, जितना, कितना ।

विकृत रूप -

संज्ञा की भांति सर्वनाम कारकीय परसर्ग लगने से पूर्व जो रूप ग्रहण करता है उसे विकृत रूप कहा जाता है । विकृत रूप के रूप दोनों वचनों में निर्मित होते हैं । विकृत रूपों की दृष्टि से मानक हिन्दी की सार्वनामिक प्रकृति की अपनी मौलिक विशेषता है ।

अपभ्रंश और हिन्दी सर्वनाम की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन -

बहुत से विद्वान हिन्दी सर्वनामों का सम्बन्ध सीधा संस्कृत से जोड़ते हैं पर यह बहुत दूर की कल्पना है, भाषा विकास की दृष्टि से किसी परवर्ती भाषा का विकास सूत्र उसकी पूर्वज भाषा में होता है, इसलिए अपभ्रंश से ही हमें हिन्दी के विकास के अध्ययन को शुरू करना चाहिए । हिन्दी सर्वनामों का अपभ्रंश से सीधा सम्बन्ध है ।

मैं - मैं का संस्कृत के अहं और मया से सम्बन्ध नहीं है, अपभ्रंश में कर्म करण और अधिकरण में " मइं " होता है ।'मइं जाणिउं' - यह कमर्णि प्रयोग है । इसी मइं से मैं का विकास हुआ । डाक्टर सुनीतकुमार "मैं"के "अनुनासिक" में "एन" का प्रभाव मानते हैं । संस्कृत और प्राकृत का कर्म वाच्य हिन्दी में कर्तृवाच्य बन जाता है, अत: "मैं" का कर्तरि प्रयोग असम्भव बात नहीं ।

मुझ - अपभ्रंश में अपादान और सम्बन्ध के एकवचन में " महु और मुज्झु रूप होते हैं - मज्झु से तुज्झ के सादृश्य (Analogy) पर हिन्दी मुझ' निकला है । पुरानी हिन्दी में " मुझ" रूप उपलब्ध है ।

हम - अपभ्रंश में कर्ता और कर्म के बहुवचन में "अम्हे अम्हइं" रूप बनते हैं । अम्हे से आदि "अ" का लोप और वर्णविपर्यय के द्वारा "हम" रूप सिद्ध होता है। संस्कृत के "वय" से हिन्दी के "हम" का कोई सम्बन्ध नहीं ।

हौं कर्ता के एकवचन के हउं से निकला है, ब्रज में इसका इसी अर्थ में

प्रयोग खूब उपलब्ध है ।

"तू" - तू का विकास " तुहुं " और संस्कृत त्वम् से माना जा सकता है 'तुहुं'में "ह" का लोप और संधि करने से तू बनता है; अथवा "त्वम् " के "व" का सम्प्रसारण करके तुम और उससे फिर तूं रूप हुआ ।

तैं - ब्रज का तैं सीधे अपभ्रंश के तइं से निकला है ।

तुम - तुम का सम्बन्ध तुम्हे से है । यह अपभ्रंश के कर्त्ता और कर्म के बहुवचन का रूप है । संस्कृत के यूयं से इसका कोई सम्बन्ध नहीं ।

तुझ - अपभ्रंश के अपादान और सम्बन्ध के एकव चन में "तुज्झ" रूप होता है, इसी तुज्झ से तुझ रूप निकला ।

हमारा तुम्हारा - संबंध विशेषण के अर्थ में, युस्मत् और अस्मत् से संस्कृत मे युस्मदीय और अस्मदीय बनते हैं, अपभ्रंश में इसके लिए तुम्ह अम्ह शब्दों से "डार" प्रत्यय लगताहै, "डार" के "ड " का लोप करने पर तुम्हारा हमारा रूप बनते हैं। हम तुम्हारा कर मरउं में यह रूप दिखाई देता है।आधुनिक हिन्दी की आकारान्त प्रवृत्ति होने से तुम्हारा हमारा रूप बनते हैं । इन्हीं के सादृश्य पर तेरा मेरा रूप समझना चाहिए ।

वे वह ये यह - हिन्दी में अन्यपुरूष का काम निर्देशवाचक सर्वनामों से लिया जाता है । डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने वह और यह की व्युत्पत्ति अनिश्चित मानी है । आपका मत है कि इनका विकास अपभ्रंश के किसी असाहित्यिक शब्द से हुआ

होगा । अपभ्रंश में अदस शब्द को कर्त्ता के बहुवचन में " ओइ" आदेश होता है ।'इ'का लोप और व श्रुति करने पर" वो" रूप बनता है के अर्थ में, जो अब भी प्रयुक्त है ।

वो = से "ह" श्रुति (Glidee) करने पर वह रूप बनता है इसी प्रकार एतद् शब्द को "एइ" आदेश होता है । "इ" का लोप और य श्रुति करने पर ये रूप स्वत: सिद्ध है " वह " के सादृश्य पर "यह " रूप भी कल्पित कर लिया गया जान पड़ता है भाषा विकास में प्राय: एक रूप के सादृश्य पर उसके अनुरूप अन्य रूपों को कल्पना कर ली जाती है ।

किसका, इसका, उसका, जिसका - का असु, जसु, कसु आगे से विकास हुआ है । अपभ्रंश काल तक ये पद थे,आदि आधुनिक भाषा काल में उनसे परसर्ग लगाकर विभक्ति का निर्देश किया जाने लगा ।

जो सो - सम्बन्ध वाचक, जो और सो की व्युत्पत्ति अपभ्रंश जु और सु से स्पष्ट है । अपभ्रंश में दोनों का प्रयोग मिलता है ।'तं बोल्लिअइ जु निव्वहइ'," जो मिलइ सोक्खह सो णउं "

कौन - प्रश्नवाचक कौन, 'कवण'से सम्प्रसारण और गुण करने पर बनता है ।

आप - आप का विकास अप्पाणु से हुआ । " आपण पइ प्रभुं होइअइ " में आप विद्यमान है ।

<u>जैसा तैसा ऐसा कैसा</u> - इन गुणवाचक सर्वनामों का विकास सीधा अपभ्रंश के जइस, तइस, अइस और कइस से सम्बन्ध रखता है । संस्कृत यादृश, तादृश ईदृश और कीदृश से इसका कोई सरोकार नहीं । हिन्दी की प्रवृत्ति आकारान्त है अत: जैसा प्रभृति रूप सिद्ध हो जाते हैं ।

पाँचवाँ-अध्याय

विशेषण

पाँचवा – अध्याय

अपभ्रंश में विशेषण

अपभ्रंश में संज्ञा शब्दों के समान ही विशेषणों में रूपात्मक का विधानहै। संज्ञा शब्दों की तरह अपभ्रंश में विशेषण भी संस्कृत और प्राकृत की प्रवृत्तियाँ छोड़ कर स्वतन्त्र और शून्य हो गए हैं । संस्कृत में विशेषण विशेष्य" के लिंग वचन और विभक्ति का अनुसरण करताहै, किन्तु अपभ्रंश में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती । इस भाषा में निम्नलिखित विशेषण मिलते हैं –

§1§ संख्यावाचक विशेषण

§2§ सार्वनामिक विशेषण

§3§ संख्यावाचक विशेषण भी दो प्रकार के होते हैं –

§1§ पूर्णांक बोधक

§2§ अपूर्णांक बोधक

§1§ संख्यावाचक –

अपभ्रंश में संख्याओं के रूप प्राय: प्राकृतों के ही अनुरूप हैं । दशक शतक, आदि समस्त रूप वाली संख्याओं का अपभ्रंश में अभाव है ।

§अ§ पूर्णांक विशेषण –

यह विशेषण सभी संख्याओं का अलग–अलग बोध कराता है । पहली संख्या एक के लिए "एक्क" "एक"तथा "एग" विशेषण मिलते है "एग" का ह्रस्व रूप "इग" भी मिलता है ।

" एक्क" विशेषण का स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग दोनों में प्रयोग होता है । इस प्रकार इसके एक्क, एक्कु, एक्का, एक्को, एक्के, एक्कलिय आदि रूप में बनते हैं ।

दो के लिए "दु" तथा "बे" दो रूप मिलते हैं । संस्कृत के द्वि से वकार का लोप करके "दु" तथा दकारका लोप करके "बे" बना है । सभी विभक्तियों में इसका प्रयोग मिलता है , यथा दु, दुं, दोन्नि, दुन्नि, बिण्णि, बिहिं, दुण्हं ।

इसी प्रकार अन्य संख्याओं के भी रूप मिलतेहैं जो इस प्रकार है :

अपभ्रंश	तिण्णि तिअ, तिण्णा।
"	चउ, चयारि ।
"	पंच, पण्ण, पण ।
"	छ, छअ ।
"	सत्त, सात ।
"	अट्ठ , अट्ठाआ, अट्ठाई ।
"	णव ।
"	दस, दह
"	ग्यारह, इग्गारह, इहदह

सौ तक की अपभ्रंश संख्या इस प्रकार हैं ।

दुवारह, तेरह, चउदह, पण्णरह, सोलह, सत्तारह , अट्ठारह, एगुणवोस, बोस, एक्कवोस, बाईस, तेइस, चउवोस, पंचवोस, छब्बोस, सत्ताइस, अट्ठाइस, एगुणतीस, तीस, एक्कतीस, बत्तिस, § बत्तीसह §, तेत्तोस, चउत्तोस, पंचतोस, छत्तोस, सत्तोस, अट्ठतोस, एगुणचालोस, चालोस, एक्कचालोस, बाआलिस, तियालिस, चउवालोस, पंचतालोसह, छायालोस, §छालोस§, सत्तचालोस, अठतालिस, §अट्ठयालोस §, एक्कूणपच्चास, पण्णस, एक्कवण्णास, दुवणास, तिवण्णास, चउण्णास, पंचवण्णास, § पण पण्णास§, छप्पणास, §छप्पण§, सत्तावण्णिअ § सत्तावणाह, सत्तवण्णास§, अट्ठावण § अट्ठवण्णास§, एक्कुणसट्ठि, सट्ठि, एक्कसट्ठि , बासट्ठि, §बासट्ठो दुसट्ठि§, तिसट्ठि, चउसट्ठि, पणसट्ठि § पंचसट्ठि§, छसट्ठि, सत्तसट्ठि, अट्टसट्टि, एक्कूणहत्तरि, सत्तरि, एकहत्तरि, बाहत्तरि, §दुसत्तरि§, तेहत्तरि §तिसत्तरि§, चउहत्तरि, पंचहत्तरि, छहत्तरि, सत्तहत्तरि, अट्ठहत्तरि, एक्कूणासो, असो § असोति, असोअ§, एक्कासो § एक्कासोति§, बेआसो, §दुवासो§ तियासो, §तेयासोति§, चउएसो, पंचासो, छयासो §छासोति,§ सत्तासो §सत्तासोति§, अट्ठासो §अट्ठासोति§, नवासो, §एक्कूणासो, णवइ § णवदि§, एक्कणवइ, §एक्कणवदि§, बाणउइ §, दुणउदि§ तिणवइ §तिणउदि§, चउणवइ, §चउणवदि§ पंचणवइ § पंचणवदि§, छाणवइ § छणवेआ§, सत्ताणवइ, अट्ठणवइ, णवणवइ, सय § सआ, सइ§।

सौ से आगे हजार के लिए " सहस" लाख के लिए "लक्ख" तथा करोड़ के लिए "कोडि" शब्द मिलते है ।

§ब§ अपूर्णांक बोधक विशेषण -

अपूर्ण बोधक विशेषण के लिए अपभ्रंश में अद्ध §अड्ढ§ पाउण, सवायअ तथा साड्ढ का प्रयोग होता है ।

पाउण	पादोन	पाउणछ	= $5\frac{3}{4}$
सवायअ	सपादक	सवायअछ	= $6\frac{1}{4}$
साड्ढ	सार्ध	साड्ढ	= $6\frac{1}{2}$

§स§ क्रमवाचक विशेषण -

क्रमवाचक विशेषण के लिए अपभ्रंश में क्रमशः पढम, बीअ, §बीय§ तीअ, चउत्थ, पंचम, छट्ठ, सत्तवँ, अट्ठवँ, णववँ, दसवँ, एगारहवँ, बारहँव, बीसवँ तीसवँ आदि का प्रयोग होता है ।

पढम- प्रथम , पहिलय, पहिलउ प्रथलिक, पहिलारय प्रथिलतरक ।
§स्त्री0§ पहिलारी प्रथिलतरका § प्रथमतर§

बीय - बीय बीय बीयउ, बीयय, बिज्जय द्वितीय, दुइय,
दुइया, दुइओ दुज्जा द्वितीया ।

तीय- तइअ < तइय < तइयउ < तृतीय ; तइयय < तृतीयक; तिज्जा,
तिज्ज < तृतीय ।

चउथ - चउत्थ < चोत्थ < चतुर्थ , चउथय < चतुर्थक ।

पंचम - पंचवं < पञ्चम ; पंचम < पंचवँ ।

छट्ठ- छट्ठ < षष्ठ, षष्ठय < षष्ठक । स्त्री० छट्ठी <
षष्ठी । सात, आठ , नौ आदि के पंचम की भाँति म, याँवँ
प्रत्यय जोड़कर रूप बनते हैं ।

आवृत्तिवाचक विशेषण -

पूर्णांक बोधक संख्या के पूर्वपद बनाकर गुण उत्तरपद के साथ समास करके आवृत्तिवाचक विशेषण बनाने की पद्धति प्रा० भा० आ० में है । म० भा० आ० ने और तदनन्तर अपभ्रंश और आ० भा० आ० ने भी उसी का अनुसरण किया प्राकृत पैंगल या अन्यत्र प्रयुक्त कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं - दुण § प्रा० पैं०§ < द्विगुण, दुणा § प्रा० पैं० § < द्विगुणाः । तिगुण § प्रा० पै०§ < त्रिगुण ।

समुदायवाचक विशेषण -

समुदायवाचक विशेषण में समूह या एक ही सूचना देने के लिए विशेषणों का प्रयोग किया जाता है उदाहरण -

§क§ अवधारणार्थ - एक्कइ § प्रा० पैं०§ < एकं हि § प्रा० पैं० § < एकं हि
दुक्कइ § प्रा० पैं०§ एक्कइ के अनुकरण पर < द्विकं हि

§ख§ समाहारार्थ - एक्कल < एकल § प्रा० पैं०§, एक्कल § भ० क०§

दुइ < द्वय

तिअ < त्रिक या त्रय

चउक्क < चतुष्क

संस्कृत की भाँति तर और तम जोड़कर अपभ्रंश में भी तुलनावाचक विशेषणों का निर्माण होता है । कभी सरल ढंग से ही तुलना के लिए विशेषण का प्रयोग किया जाता है और कभी उसे सीधे संस्कृत से ले लिया जाता है; यथा, कणिट्ठ, पाविट्ठ ।

सार्वनामिक विशेषण -

विशेषण के रूप में प्रयुक्त सर्वनाम शब्द या उनसे बनने वाले विशेषण सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं। अपभ्रंश में ये निम्नांकित होते हैं -

§अ§ सम्बन्ध- वाचक - पुरूष के अनुसार इनके रूप बनते हैं । यथा-

उत्तम पुरूष एकवचन- महार महारू

उत्तम पुरूष बहुचन - अम्हारय

मध्यम पुरूष एकवचन- तुहार, तुहारह

प्रथम पुरूष - तारह, तोरह

§ब§ संस्कृत के यादृश, तादृश, कीदृश, ईदृश से जइस तइस, कइस अइस् रूप बनते हैं ।

§स§ यादृक्, तादृक्, कीदृक्, और ईदृक, संस्कृत विशेषणों से जेहु, केहु, §केहउ§ तथा एहु विशेषण अपभ्रंश में बनते है ।

§द§ परिणाम सूचित करने के लिए कियत्थ § केत्तिल, केत्तुल § तथा जित्तिउ, §जेत्तिला, जेत्तुल§ रूप बनते हैं, इसी प्रकार तावत्क से तेत्तिउ §तेत्तिला, तेत्तुल§ का प्रयोग अपभ्रंश में चलता है । इसी प्रकार परिणामवाचक और संख्यावाचक के मिले-जुले रूप के लिए "एवडु" और "एत्तुल" प्रत्ययों से जेवडु और जेत्तुल, केत्तुल रूप भी बनते हैं ।

हिन्दी में विशेषण

विशेषण वह पद है जो गुण, परिणाम और संख्या आदि विशेषताओं का बोध कराकर किसी संज्ञापद (सर्वनाम, विशेषण) की व्याप्ति को मर्यादित (या सीमित) करता है । संज्ञा पद किसी समूचे वर्ग का बोध कराता है । उसकी विशेषता का बोध कराकर विशेषण पद उसे एक विशिष्ट वर्ग बना देता है। यथा- गाय, बैल, आदमी आदि संज्ञापदों से पूरे वर्ग (सभी गायों, बैलों आदमियों) का बोध होता है । किन्तु काली गाय, श्वेत बैल, अच्छा आदमी, विशेषण पद (काली) (श्वेत) (अच्छा) जोड़ने से केवल क्रमशः गाय, बैल, आदमी के विशिष्ट या सीमित वर्ग का ही बोध होगा ।

व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ जो विशेषण आता है वह उस संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित नहीं करता, केवल उसका अर्थ स्पष्ट करता है; जैसे- पतिव्रता सीता, प्रतापी भोज, दयालु ईश्वर इत्यादि । इन उदाहरणों में विशेषण संज्ञा के अर्थ स्पष्ट करते हैं । " पतिव्रता सीता' वही व्यक्ति है, जो "सीता" है। इसी प्रकार " भोज" और "प्रतापी भोज"" एक ही व्यक्ति के नाम हैं । किसी शब्द काअर्थ स्पष्ट करने के लिए जो शब्द आते हैं, उन्हें समानाधिकरण कहते हैं । ऊपर के वाक्यों में 'पतिव्रता,"प्रतापी" और "दयालु" समानाधिकरण विशेषण हैं ।

जातिवाचक संज्ञा के साथ उसका साधारण धर्म सूचित करने वाला विशेषण समानाधिकरण होता है; जैसे मूक, पशु, अबोध बच्चा, काला कौआ, इत्यादि ।

विशेष्य के साथ विशेषण का प्रयोग दो प्रकार से होता है -§1§ संज्ञा के साथ, §2§ क्रिया के साथ । पहले प्रयोग को विशेष्य विशेषण और दूसरे को विधेय विशेषण कहते हैं । विशेष्य विशेषण, विशेष्य के पूर्व और विधेय विशेषण, क्रिया के पहले आता है, जैसे; "ऐसी सुडौल चीज कहीं नहीं बन सकती है ।' " यह बात सच है ।'

अर्थ की दृष्टि से विशेषण के निम्न वर्ग बन सकते है । §1§ सार्वनामिक विशेषण §2§ गुणबोधक विशेषण §3§ संख्याबोधक विशेषण ।

प्राय: सभी सर्वनाम किसी भी संज्ञा के पूर्व आकर वाक्यार्थ की दृष्टि से विशेषण का कार्य करते हैं। रचना की दृष्टि से इनका संबंध सर्वनाम से है। सभी प्रकार के गुण का बोध कराने वाले पद गुणबोधक होते हैं ये कम, अधिक, बहुत आदि माप, तौल का बोध कराने वाले पद कहलाते हैं । संख्याबोधक के अन्तर्गत सब प्रकार की संख्याओं का बोध कराने वाले पद आते हैं ।

सार्वनामिक विशेषण -

सार्वनामिक विशेषणों के दो भेद होते हैं - मूल और यौगिक । "आप'

"क्या " और "कुछ" को छोड़कर शेष मूल सार्वनामिक विशेषणों के पश्चात् विभक्त्यंत या संबंधसूचकांत संज्ञा आने पर उनके दोनों वचनों में विकृत रूप आता है; जैसे-" मुझ दीन को ", "तुम मूर्ख स ", "किस देश में", " उस गाँव तक", "किसी वृक्ष की छाल", " उन पेड़ों पर" इत्यादि ।

यौगिक सार्वनामिक विशेषण आकारान्त होते हैं; जैसे ऐसा, वैसा, इतना, उतना, इत्यादि । ये आकारांत विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार गुणवाचक आकारान्त विशेषणों के समान बदलते है; जैसे , ऐसे मनुष्य को, ऐसे लड़के, ऐसी लड़कियाँ इत्यादि ।

<u>गुणवाचक -</u>

गुणवाचक विशेषणों में केवल आकारान्त विशेषण विशेष्यनिष्ठ होते है; अर्थात् वे विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदले हैं। इनमें वही रूपान्तर होते हैं, जो संबंध कारक की विभक्ति "का" में होते है । आकारांत विशेषणों में विकार होने के नियम ये हैं ।

§1§ पुल्लिंग विशेष्य बहुवचन में हो अथवा विभक्त्यंत वा संबंधसूचकांत हो, तो विशेषण के अंत्य "आ" के स्थान में "ए" होता है; जैसे-छोटे लड़के, ऊँचे घर के बड़े लड़के समेत इत्यादि ।

§2§ स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ विशेषण के अंत्य"आ" के स्थान में "ई" होती है; जैसे - छोटी लड़की, छोटी लड़कियाँ , छोटी लड़की को, इत्यादि ।

(3) आकारांत, गुणवाचक विशेषणों को छोड़ शेष गुणवाचक विशेषणों में कोई विकार नहीं होता है ; जैसे-लाल टोपी, भारी बोझ, ढालू जमीन, इत्यादि ।

गुणवाचक विशेषणों की संख्या और सब विशेषणों की अपेक्षा अधिक रहती है। इनके कुछ मुख्य अर्थ हैं -

काल- नया, पुराना, ताजा, भूत, वर्तमान, भविष्य, प्राचीन, अगला, पिछला, मौसमी, आगामी, टिकाऊ, इत्यादि ।

स्थान- लंबा, चौड़ा, ऊँचा, नीचा, गहरा, सीधा, सँकरा, तिरछा, भीतरी, बाहरी, ऊजड़, स्थानीय इत्यादि ।

आकार- गोल, चौकोर, सुडौल, समान, पोला, सुंदर, नोकीला इत्यादि।

रंग - लाल, पीला, नीला, हरा सफेद, काला, बैंगनी, सुनहरी, चमकीला, धुँधला , फीका इत्यादि ।

दशा- दुबला, पतला, मोटा, भारी, पिघला, गाढ़ा, गीला, सूखा, घना, गरीब, उद्यमी, पालतू, रोगी इत्यादि ।

गुण - भला, बुरा, उचित, अनुचित, सच, झूठ, पापी, दानी , न्यायी, दुष्ट, शान्त, इत्यादि ।

गुणवाचक विशेषणों के साथ हीनता के अर्थ मे "सा" प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे, 'बड़ा सा पेड़,' 'यह चांदी खोटी सी दिखती है'।

"नाम", "संबंधी" और "रूपी" संज्ञाओं के साथ मिलकर विशेषण होते हैं, " बाहुक नाम सारथी', 'घर संबंधी काम", 'तृष्णा रूपी नदी' इत्यादि ।

" सरीखा" संज्ञा और सर्वनाम के साथ संबंध सूचक होकर आता है । जैसे मुझ सरीखे लोग ।

" समान" और "तुल्य" का प्रयोग कभी - कभी संबंध सूचक के समान होता है । जैसे, लड़का आदमी के बराबर दौड़ा ।

गुणवाचक विशेषण के बदले बहुधा संज्ञा का संबंधकारक आताहै जैसे, 'घरू झगड़ा" = घर का झगड़ा ।

जब गुणवाचक विशेषणों का विशेष्य लुप्त रहता है तब उनका प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है। जैसे-'बड़ों ने सच कहा है ।'

संख्या बोधक विशेषण -

संख्याबोधक विशेषण के मुख्य तीन भेद हैं - §1§ निश्चित संख्याबोधक § 2§ अनिश्चित संख्याबोधक और§3§ परिणाम बोधक ।

§1§ निश्चित संख्याबोधक विशेषण -

निश्चित संख्याबोधक विशेषणों से वस्तुओं की निश्चित संख्या का बोध होता है, जैसे-एक लड़का, पच्चीस रूपए, दूना मोल, पाँचों इन्द्रियाँ इत्यादि ।

निश्चित संख्यावाचक विशेषणों के पांच भेद है - (1) गुणवाचक, (2) क्रमवाचक, (3) आवृत्ति वाचक, (4) समुदायवाचक और (5) प्रत्येक बोधक ।

गुणवाचक विशेषणो के दो भेद हैं -

(अ) पूर्णांक बोधक विशेषण -

एक, दो, तीन, चार साठ, नब्बे, सौ, हजार, लाख आदि के बोधक सभी पद पूर्ण संख्या बोधक में आते हैं ।

(2) अपूर्णांक बोधक विशेषण -

चौथाई ($\frac{1}{4}$), तिहाई ($\frac{1}{3}$), पाव ($\frac{1}{4}$), आधा ($\frac{1}{2}$), पौना ($\frac{3}{4}$), सवा ($1\frac{1}{4}$), सवाई ($1\frac{1}{4}$), डेढ़, ($1\frac{1}{2}$), अढ़ाई या ढाई ($2\frac{1}{2}$), साढ़े तीन ($3\frac{1}{2}$) आदि सभी अपूर्ण संख्याबोधक पद गिने जाते हैं ।

क्रमवाचक विशेषण -

पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, नवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, आदि सभी क्रमबोधक संख्यापद में सम्मिलित किये जाते हैं ।

क्रमवाचक विशेषण पूर्णांकबोधक विशेषणों से बनते हैं । पहले चार क्रमवाचक विशेषण नियम रहित है, जैसे-

एक	=	पहला	तीन	=	तीसरा
दो	-	दूसरा	चार	=	चौथा

पाँच से लेकर आगे के शब्दों में "वाँ" जोड़ने से क्रमवाचक विशेषण बनते हैं; जैसे --

पाँच = पाँचवाँ	दस = दसवाँ
छ - {छठवाँ} छठाँ	पंद्रह - पंद्रहवाँ
आठ = आठवाँ	पचास - पचासवाँ

कभी- कभी संस्कृत क्रमबोधक विशेषणों का भी उपयोग होता है; जैसे - प्रथम { पहला}, द्वितीय { दूसरा, तृतीय {तीसरा}, चतुर्थ {चौथा} , पंचम { पाँचवाँ }, षष्ठ { छठा} दशम { दसवाँ } ।

आवृत्ति वाचक विशेषण -

दुगुना { दूना}, तिगुना, चौगुना, पंचगुना, छःगुना, सतगुना, अठगुना, नौगुना, दसगुना आदि पद आते हैं । ये संख्या के मूल रूप में "गुना" जोड़कर बनाये जाते हैं ।

समुदाय वाचक विशेषण -

दोनों, तीनों, चारों, पाँचों, छहों, सातों, आठों, नवों, दसों, ग्यारहों, बारहवों आदि सब एक समुदाय के रूप में संख्या का बोध कराते हैं । ये संख्या के मूल रूप में "ओं" जोड़ने से निष्पन्न होते है ।

प्रत्येक बोधक -

प्रत्येक बोधक विशेषण में कई वस्तुओं में से प्रत्येक का बोध होता

है, जैसे-" हर घड़ी", 'प्रत्येक जन्म", " प्रत्येक बालक" इत्यादि ।

अनिश्चित संख्याबोधक विशेषण -

जिस संख्याबोधक विशेषण से किसी निश्चित संख्या का बोध नहीं होता , उसे अनिश्चित संख्याबोधक विशेषण कहते है । जैसे- एक दूसरा §अन्य, और§ सब § सर्व, सकल, समस्त कुछ§ बहुत §अनेक, कई, नाना§ अधिक § ज्यादा§ कम, कुछ आदि § इत्यादि, वगैरह अमुक § फलाना§ ।

अनिश्चित संख्या के अर्थ में इनका प्रयोग बहुवचन में होता है।

परिणामबोधक विशेषण -

परिणामबोधक विशेषणों से किसी वस्तु की नाप या तौल का बोध होता है। जैसे- और, सब , सारा, समूचा, अधिक, कम, थोड़ा, पूरा, अधूरा, यथेष्ट , इतना, उतना, कितना, जितना आदि ।

आकारान्त विशेषणो में लिंग वचन सम्बन्धी परिवर्तन होता है, अर्थात संज्ञा- सर्वनाम के लिंग वचन के अनुसार विशेषण का भी लिंग- वचन परिवर्तन होताहै। यथा- अच्छा लड़का, अच्छे लड़के, अच्छी लड़की विशेषण के विकारी रूप में आने पर और कारक परसर्ग लेने पर आकारान्त विशेषण भी विकारी रूप में आ जाता है, किन्तु कारक परसर्ग केवल विशेष्य में लगता है। विशेषण में न तो कारक परसर्ग लगता है और न वह विकारी रूप बहुवचन के प्रत्यय लेता है। यथा- अच्छे लड़के से, अच्छे लड़कों ने, अच्छी लड़कियों से आदि ।

आकारान्त के अतिरिक्त अन्य ध्वनियों (स्वर या व्यंजन) में अन्त न होने वाले किसी भी विशेष्य पद में लिंग- वचन- कारक सम्बन्धी कोई विकार नहीं होता है। यथा- लाल झंडे वाले, दुःखी मजदूरों ने सुखी पूँजीपतियों से संघर्ष किया, अन्त में दोनों ने सफेद झंडे दिखाकर संधि की ।

किसी संख्यावाचक के बाद कोई प्राय: लगभग एक आदि पद जोड़कर लगभगपन का बोध कराया जाता है यथा- कोई बीस लड़के गये, प्राय: दस लोग जाते हैं, बीस एक आदमी गये ।

समता दिखाने के लिए भी "सा" प्रत्यय जोड़ा जाता है जो रूप में समानता सूचक (सा" के समान है किन्तु उसका उद्गम (संस्कृत शस्) भिन्न स्त्रोत से है । यथा- बहुत साधन, थोड़ी सी तकलीफ़, ऊँचा- सा पहाड़, बड़े से आदमी ।

संस्कृत - पाली - प्राकृत तक विशेष्य के अनुसार विशेषण में लिंग, वचन, कारक सम्बन्धी परिवर्तन होते रहे, यहाँ तक कि कारक प्रत्यय भी विशेष्य के अनुसार ही लगते थे । यथा- सुन्दरेण बालकेन । अपभ्रंश - काल से आकारान्त विशेषणों को छोड़कर विशेषण पद लिंग, वचन, कारक के परिवर्तन से मुक्त हो गये । 'सदेश रासक" 'प्राकृतपैंगलम्' में अनेक विशेषण पद विशेष्य के लिंग- वचन- कारक से प्रभावित रहते है । मानक हिन्दी ने अपभ्रंश की यही परम्परा अपना ली है ।

संज्ञापदों में सा, से, सी सरीखा, समान, तुल्य, जैसा जैसे-आदि पदों को विशेषण परसर्गों या प्रत्ययों की भाँति लगाकर ही समानता का बोध कराया जाता है । यथा- अच्छा- सा बालक, हीरोइन - जैसी साड़ी पहाड़ जैसा हाथी, कपि तुल्य चंचल ।

तुलना -

मानक हिन्दी में वियोगात्मक रूप से विशेषणों की तुलना की जाती है । दो की तुलना में कारक परसर्ग "से" को संज्ञा के विकारी रूप के साथ जोड़ दियाजाता है । यथा -

(क) शरीर से इन्द्रिय, इन्द्रिय से मन, मन सेबुद्धि, बुद्धि से आत्मा सूक्ष्म है ।

(ख) धन से विद्या, विद्या से अध्यात्म ऊँचा है ।

दो की तुलना करते समय "से" परसर्ग के पश्चात अधिक, कम, ज्यादा या अन्य इन्हीं का पर्यायवाची शब्द जोड़ दिया जाता है । यथा- उससे अधिक बलवान बालक ।

दो से अधिक की तुलना में प्रथम संख्यावाचक विशेषण को एक समुदाय मानकर उसे विकृत रूप बहुवचन के रूप में लाया जाता है, तब उसके बाद" से या में अधिक " (कम, ज़्यादा) आदि पद जोड़कर तुलना की जाती है । यथा- दोनों पाँचों, बीसों, या सैकड़ों धनी लोगों से (में) वह दीन अध्यवसायी उच्चात्मा विद्वान् ऊँचा है । कभी -कभी "की अपेक्षा" वाक्यांश जोड़कर दो की तुलना की जाती है। यथा- धनी की अपेक्षा विद्वान सम्माननीय है ।

सर्वश्रेष्ठता का बोध कराने के लिए मानक हिन्दी में "सब", "सभी" के पश्चात् तुलनाबोधक कारक परसर्ग "से" जोड़ा जाता है ।

संस्कृत-प्रधान शैली मे तुलना के लिए संस्कृत के तुलनात्मक प्रत्यय तर, तम ﴾ अधिकतर, अधिकतम﴿ जोड़े जाते हैं । हिन्दी प्रदेश की सभी उपभाषाओं ﴾ प0 हि0, पू0 हि0, बिहारी, पहाड़ी, राजस्थानी﴿ में व्याकरणिक पदों की रचना मानक हिन्दी की ही भाँति है, केवल हिन्दी का अकारान्त विशेषण जनपदीय खड़ी बोली, हरियानी के अतिरिक्त ब्रज (बुंदेली, कन्नौजी), राजस्थानी ﴾ मारवाड़ी मेवाड़ी, जयपुरी, मालवी﴿ तथा पहाड़ी, ﴾गढ़वाली, कुमाऊँनी, नैपाली﴿ में ओकारान्त हो जाता है तथा पूर्वी हिन्दी ﴾अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी ﴿, बिहारी ﴾ भोजपुरी , मगही, मैथिली﴿ में वही कभी व्यंजनान्त ﴾ मा0 हि0 - भला, बड़ा, पूर्वी हिन्दी- भल् , बड़्, आदि ﴿ और कभी वाकारान्त ﴾ यथा - बड़ा, छोटा, काला, गोरा, हरा, क्रमशः बड़कवा, छोटकवा, कलुवा, गोरकवा, हरिकवा﴿ हो जाता है। हिन्दी की भाँति ही विशेषण के लिंग - वचन में भी परिवर्तन होता है।

शेष विशेषणों में लिंग- वचन - कारक- सम्बन्धी परिवर्तन नहीं होता ।

समानता का बोध कराने के लिए खड़ी बोली, हरियानी में "सा" प्रत्यय, ब्रज, राजस्थानी पहाड़ी में "सौ" तथा पूर्वी हिन्दी, बिहारी में "सन्" सम् जोड़े जाते हैं ।

हिन्दी की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति ने एक हजार वर्षों में विकसित होकर अपना निश्चित स्वरूप ग्रहण कर लिया है और उस स्वरूप में अधिकांशत: तद्भावता की प्रधानता है ।

अपभ्रंश और हिन्दी विशेषण की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन -

अपभ्रंश और हिन्दी के विशेषणों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पूर्ण संख्यावाचक, अपूर्ण संख्यावाचक, आवृत्ति वाचक के रूप विकसित होकर हिन्दी संख्या विशेषण रूपों में विकसित होकर हिन्दी विशेषण रूपों में व्यक्त हुए हैं। अपभ्रंश में विशेषण कहीं- कहीं विशेष्य के अनुसार लिंग, वचन, कारक में परिवर्तित होता है कहीं- कहीं स्वतन्त्र हो गया है धीरे-धीरे यही पद्धति हिन्दी में विकसित हो गयी। हिन्दी में अब विशेष्य के अनुसार विशेषण के लिंग, वचन, कारक नही होते अथवा यूँ कहें कहीं विशेष्य के लिंग, वचन, कारक के अनुसार विशेषण में परिवर्तन नहीं होता।

पूर्णांक विशेषण -

अपभ्रंश में एक्क प्रयोग होता है। दो < दु या बे ये दोनों रूप मिलते हैं। तिण्णि, चउ, बारह < दुवारह, पंद्रह < पण्णरह आदि रूप मिलते हैं हिन्दी में एक, दो, तीन चार, बारह, पन्द्रह आदि रूप हैं।

अपूर्णांक बोधक विशेषण -

अपूर्णांकबोधक विशेषण के लिए अपभ्रंश में अद्ट ‡अद्ध‡ पाउण, सवायअ तथा साड्ढ आदि प्रयोग होता है हिन्दी में आधा, पौन, सवाया ड्योढ़ा आदि प्रयोग होता है।

क्रमबोधक विशेषण -

क्रमबोधक विशेषण के लिए अपभ्रंश में क्रमशः पढम बीअ § बीय§, तीअ, चउत्थ, पंचम, छट्ट, सत्तवँ, अट्टवँ, णववँ, दसवँ, एगारहवँ, बारहवँ, बीसवँ, तीसवँ आदि का प्रयोग होता है । हिन्दी में पहला, दूसरा, तीसरा चौथा, पाचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ, नवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ बारहवाँ, बीस, तीस आदि का प्रयोग होता है।

आवृत्ति बोधक विशेषण -

आवृत्तिबोधक विशेषण में पूर्णांकबोधक संख्या को पूर्वपद बनाकर गुण उत्तरपद के साथ समास करने आवृत्तिवाचक विशेषण बनाने की पद्धति प्रा० भा० आ० मे हैं । म० भा० आ० ने और तदनन्तर अपभ्रंश और आ० भा० आ० ने भी उसी का अनुसरण किया, उदाहरण-

दूण § प्रा० पै०§ < द्विगुण, दुणा § प्रा० पै०§ < द्विगुणाः द्विगुणाः । तिगुण § प्रा० पै०§ त्रिगुण । हिन्दी में ये संख्या के मूल रूप में गुना जोड़कर बनते हैं। उदाहरण - दुगुना § दूना§, तिगुना, चौगुना पंचगुनाआदि ।

समुदाय बोधक विशेषण -

समुदायबोधक विशेषण अपभ्रंश में समूह या एक की सूचना देने के

लिए एक्कड़, दुक्कड़, एक्कल, दुइ, तिअ, चउक्क आदि विशेषणों का प्रयोग किया जाता है हिन्दी में दोनों, तीनों, चारों, पांचों आदि सब एक समुदाय के रूप में संख्या का बोध कराते हैं। ये संख्या के मूल रूप में "ओं" जोड़ने से निष्पन्न होते हैं।

परिणाम बोधक विशेषण -

परिणाम बोधक अपभ्रंश मे एत्तिउ या एत्तिल या एत्तुल है, तेत्तिउ और तेत्तिल या तेतुल, जित्ति, जेत्तिउ या जेत्तुल आदि हैं। हिन्दी में इतना उतना जितना आदि कहते हैं।

इस प्रकार हिन्दी के अधिकांश विशेषण रूप अपभ्रंश विशेषणों के विकसित रूप हैं।

छठा - अध्याय

क्रिया रचना

के रूप पालि में इतने मिलते- जुलते होने लगे कि साधारणतया इन्हें एक ही गण माना जा सकता है । शेष गणों के रूपों पर भी भ्वादि गण का प्रभाव अधिक पाया जाता है । तीन वचनों में से द्विवचन पालि से लुप्त हो गया और छह प्रयोगों में से आत्मनेपद और परस्मैपद में अन्तिम का प्रभाव विशेष हो जाने से वास्तव में पाँच ही प्रयोग पालि मे रह गये । संस्कृत के लुट् और लृङ् के निकल जाने से पालि के लकारों की संख्या भी दस से आठ रह गयी । इस तरह किसी धातु के पालि में साधारणतया 240 (5× 8×2 × 3) ही रूप मिलते है । प्राकृत काल में यह सरलता और बढ़ी तथा यह संख्या 72 के आस-पास पहुँच गयी । प्राकृत के अनन्तर अपभ्रंश से क्रियाओं के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ । निरन्तर रूप क्षय होते रहने पर भी प्राकृत तक क्रियाएँ प्राय: संयोगात्मक थी । अपभ्रंश में क्रियाएँ संहिति से व्यवहिति की ओर तीव्रगति से उन्मुख हुई ।

संस्कृत में दृष्टिगोचर होने वाले क्रिया पद के सूक्ष्म एवं बहुविध रूप भेद अपभ्रंश में अदृश्य हो गये । संस्कृत क्रिया- विधानों से स्वच्छन्द होने की प्रवृत्ति प्राकृत काल में परिलक्षित होने लगती है पालि में भी सरलीकरण की प्रवृत्ति मिलती है । महाराष्ट्री प्राकृत के क्रिया- रूपों में गणों का प्राय: अभाव है उसमें भ्वादि गण के क्रिया- रूपों की प्रधानता है । मुख्य रूप से वर्तमान, विधि, आज्ञा भविष्य के ही प्रयोग रह गये ।

अपभ्रंश मे अकारान्त संज्ञा -रूपों की ही प्रधानताहै। संस्कृत में

विभिन्न विभक्ति रूप धारण करने वाली अन्य स्वरान्त या व्यंजनान्त संज्ञाएं अपभ्रंश में या तो अदृश्य हो गयी या अकारान्त बन गयी । यही कारण है कि अपभ्रंश में अविकरण प्रत्यय युक्त प्रथम गण की प्रधानता बनी रही तथा क्रियापद के अन्य गण अदृश्य हो गये । आत्मनेपद भी लुप्त हो गया यह बात अलग है कि कहीं- कहीं संस्कृत के अनुकरण पर आत्मने पद का प्रयोग होता रहा ‡ पिच्छए, लुब्भए, लक्खए आदि ‡कभी कृदन्तों में भी आत्मनेपद के रूप मिल जाते हैं वट्टमाण, पविस्समाण जैसे रूपों में आत्मनेपद की भ्रान्तानुकृति भी देखने को मिलती है ।

अपभ्रंश में कुछ काल दिखाई नहीं देते । भूतकाल के अद्यतन, ह्यस्तन और श्वस्तन - तीनों अपभ्रंश में लुप्त हो गये हैं । क्रियातिपत्त्यर्थ रूप भी अदृश्य हो गये हैं, केवल आसि ‡ < आसीत ही दिखाई देता है । आसि ‡ भूतकाल का आख्यात ‡ का प्रयोग तीनों ही पुरूषों में मिलता है - हउं असि -पित्त बिवाए जिणेप्पिणु, " पउ जक्खहं रक्खहं किन्नराहं लइ इत्थु आसि संचरू नराह । अपभ्रंश में भूतकाल कृदन्त से बनता है ।

क्रियापदों के गणों के अवशेष - कहीं-कहीं अपभ्रंश मे रह गये हैं, जैसे -जिणइ, कुणइ, थुणइ, बिहेइ, णासइ, णच्चइ । भूत कृदन्त से धातु निर्माण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है; जैसे- कड्ढइ, ओलग्गइ, उलुक्कइ आदि ।

प्रत्यान्त धातुओं के भी रूप अपभ्रंश में मिलते है। प्रेरक रूप ‡ णिजन्त‡, पौनः पुन्य दर्शक धातु रूप ‡ यङन्त‡ और नामधातु भी अपभ्रंश में प्राप्त है ध्वनि क्रियापद भी अपभ्रंश में प्रयुक्त मिलते हैं । इच्छादर्शक धातुओं का

अपभ्रंश में महत्व नहीं है ।

प्रेरक धातुएं - पइसारइ, विउज्झावइ , पहावइ, नच्चावइ आदि

पौन: पुण्य दर्शक धातुएँ -मरूमारइ, जाजाहि, मुमुमरइ आदि ।

नाम धातुएँ - सुहावइ , धंधई, जगडइ, हक्कारइ, जयजयकारइ, बहिरइ आदि

च्वि प्रकार की नाम धातुएं - समरसिहुवाहँ, बंधिकिउ, गोअरि होइ आदि ।

ध्वनि धातुएं - किलकिंलइ, खुसखुसइ, गिणगिणइ, गुमगुमइ, घवघवइ, रूहवुहइ ।
रूहुरूहइ कुलुकुलइ , करयरइ आदि ।

अपभ्रंश के काव्यों में इस प्रकार की धातुओं के बहुत अधिक प्रयोग मिलते है - झूरइ, दरमलिय, निक्कलिय, विसूरइ, जोवइ, जिम्मइ, झंपइ, छुट्टइ, रेहइ, घल्लिय, घल्लइ, उल्हावइ, ओहामिय, छड्डइ, छिवइ ढुक्कइ, प्रभृति धातुएं इसी प्रकार की है ।

शब्दानुकरण धातुओं के भी प्रयोग अपभ्रंश में मिलते है- झलझलिय, दलहलिय, किलगिलिय, थरहरइ, सलसलइ, रूणुरूटइ, महमहइ, खणरणंत, खणझणंत, खणखणंति कसमसंति , चलवलंति, धमधमंति, गुलगुलइ आदि में शब्दानुकरण की द्विरूक्ति से धातु निर्माण हुआ है ।

उपर्युक्त विवेचन और अपभ्रंश भाषा की धातुओं के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि अपभ्रंश में प्रयुक्त धातु रूप इस प्रकार है ।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की धातु का मध्यकालीन भारतीय

आर्य भाषा द्वारा गृहीत §1§ तत्सम रूप तथा उनके §2§ तद्भव रूप तथा §3§ देशी धातुएं या अपभ्रंश की अपनी धातुएँ §4§ शब्दानुकरण मूलक धातु और §5§ नाम धातु ।

काल -

धातु से पद- रचना करने या सर्वप्रथम काल का विचार करना पड़ता है । मूलतः अपभ्रंश में काल दो प्रकार के हैं । §1§ सरल काल §2§ संयुक्त काल

§क§ सरल काल -

प्राचीन आर्य भाषा से जो आख्यात काल आए हैं, वे हैं: सामान्य वर्तमान काल, भविष्यत्काल, भूतकाल तथा विधि- अर्थक काल । प्राचीन आर्य भाषा के कृदन्तों से जो काल प्राप्त हुए हैं, वे कृदन्त काल कहे जा सकते हैं । इनमें पूर्णभूत कृदन्त, हेतुहेतुमद्भूतकाल तथा भविष्यत्काल सम्मिलित है। पूर्णभूत कृदन्त "त" प्रत्यय से, द्वितीय "अन्त" प्रत्यय से तथा तृतीय "तव्य" प्रत्यय से चलता है ।

§ख§ संयुक्त काल -

संयुक्त काल की निष्पन्नता, 'अत" या "अन्त" भाववाची धातु आछ , हो, रह, पर निर्भर करती है। इनमें धारावाहिक वर्तमान काल तथा धारावाहिक भूतकाल की गणना की जाती है ।

वर्तमान काल -

सरल प्रत्यय - योग से धातुओं की रूप- रचना अपभ्रंश भाषा में बहुत सरल हो गई है। द्विवचन न रहने से उसके सबके सब रूप तो पहले ही समाप्त हो चुके थे, अन्य रूपों में भी कोई जटिलता नहीं रही । "चल" धातु की वर्तमान काल में रूप रचना -

	एकवचन	व्याकरणिक प्रत्यय	बहुवचन	व्याकरणिक प्रत्यय
प्रथम पु०	चलइ	(इ)	चलहिं	(हिं)
मध्यम पु०	चलहि	(हि)	चलहु	(हु)
उत्तम पु०	चलउं	(उं)	चलहु	(हु)

कुछ रूप प्राकृत से प्राप्त प्रत्ययों के साथ यथावत् चले आ रहे हैं । अतः "चल" के अन्य रूप ये भी बनते हैं :

	एकवचन	व्याकरणिक प्रत्यय	बहुवचन	व्याकरणिक प्रत्यय
प्रथम पु०	चलए	(ए)	चलन्ति	(न्ति)
	चलेदि	(एदि)	चलन्ते	(न्ते)
			चलिरे	(इरे)
मध्यम पुरुष	चलसि	(सि)	चलह	(ह)
			चलिद	

उत्तम पुरूष	चलउ	(उ)	चलमु	(मु)
	चलमि	(मि)	चलाम	(आम)
	चलामि	(आमि)	चलामो	(आमो)

इनमें से प्रारम्भ मे दिए गए रूप ही बहु प्रचलित है ।

प्राकृत वैयाकरण (हेमचन्द्र, त्रिविक्रम, तर्कवागीश, मार्कण्डेय आदि) के अनुसार अपभ्रंश में वर्तमान काल के प्रमुख व्याकरणिक प्रत्यय इस प्रकार है -

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पु०	इ	हिं
मध्यम पु०	हि	हु
उत्तम पु०	उं, उ	हुं

प्रथम पुरूष एक वचन का "इ" (<ति) रूप अपभ्रंश भाषा में प्राय: मिल जाता है - अच्छइ, अटइ, करइ, पियइ, प्रभृति रूप इसी के उदाहरण हैं । इसी "इ" को छन्दोनुरोध से "एइ" बना दिया जाता है - सिंचेइ, खंचेइ, करेइ । इसी "इ" को अनुनासिक करके मणइं, पियइं प्रभृति रूप भी बनाये जाते थे । आत्मने पद का प्रयोग अत्यल्प था, जो भी अप्पए, चिंतए, पिक्खए, मिलए जैसे रूप मिल जाते हैं । तकार को दकार करके प्रस्सदि जैसे रूप भी बनते थे ।

प्रथम पु० बहुवचन को "हि" (> न्ति - पालि - प्राकृत) के लिए आवंति, करन्ति, अच्छंति, मणंति, गणंति, जैसे प्रयोगों को देखा जा सकता है ।

मध्यम पुरूष एक वचन में प्राचीन आर्य भाषा का "सि" रूप अपभ्रंश में ध्वनि विकार से परिवर्तित होकर "सि-हि रूप में मिलता है । ज्यूल ब्लाख और हार्नली के मतानुसार इसका मूल विध्यर्थ म० पु० धि > हि है। अपभ्रंश में जाणहि, विलसहि, करहि, मुणेहि, होहि जैसे रूप मिलते हैं ।

माध्यम पुरूष बहुवचन - "हु" - अहु, करहु आदि रूप ।

उत्तम पुरूष एक वचन -"उँ" - "उ" - करउं, कहउं, विसहउं, करउ, करमु ।

उत्तम पुरूष बहुवचन - "हु" - इसे अपभ्रंश का अपना प्रत्यय कहा जा सकता है । पिशेल ने इस "हुं" के मूल को अंधकार ग्रस्त माना है। उन्होंने अपादान के "हु से इसकी सदृशता का प्रतिपादन किया है । ﴾ पा० भा० का व्याकरण पिशेल, हिन्दी अनुवादक, पृ० 445 ﴿ / भविसयत्तकहा तथा पउमचरिउ में इसके बहुतसे उदाहरण मिल जाते हैं ।

ख - भविष्यत काल -

प्राचीन आर्य भाषा में भविष्य सूचक प्रत्यय "स्य" था। उसी के मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा में ध्वनि परिवर्तित रूप ह < स < स्स ﴾ स्य﴿ और स<स्सा< स्स ﴾ स्य﴿ बने थे । इसी का ध्वनि - परिवर्तन से "ह" तथा विना ध्वनि - परिवर्तन किए "स" रूप बना है, जो अपभ्रंश भाषा की भविष्यकालीन रूप रचना में काम आता है "इहि" तथा "ईस" भी अपभ्रंश में भविष्य सूचक प्रत्यय माने जाते हैं । यहाँ "हस" धातु के इन प्रत्ययों के योग से निष्पन्न रूप प्रस्तुत हैं -

	एकवचन	बहुवचन
प्र०पु०	हसिहिइ, हसीसइ	हसिहिहिं, हसीसहिं
म०पु०	हसिहिहि, हसीसहि	हसिहिहु, हसीसहु
उ०पु०	हसिहिउं, हसीसउं	हसिहिहुं हसीसउं

व्याकरणिक प्रत्यय -

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	इ, इ	हि, हिं
म० पु०	हि, हि	हु हु
उ० पु०	उं, उं	हु उं

ग - भूतकाल -

आख्यात भूतकाल का प्रयोग अपभ्रंश भाषा में बहुत कम मिलता है। विद्वानों का मत है कि आख्यात रूप का प्रयोग प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के उत्तरकाल में ही ह्रासोन्मुखी हो गया था। फलत: अपभ्रंश में उसका शुद्ध प्रयोग न मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

अपभ्रंश में भूतकाल के क्रियापद तिङन्त नहीं थे। भूत-काल की रूप-रचना या तो - क्त आदि भूतकृदन्त के प्रत्ययों द्वारा होती थी, जैसे - गय<√गम् + क्त अथवा √भू, √अस्, √कृ आदि सहायक क्रियाओं के द्वारा संयुक्त काल के रूप में। "अपभ्रंश में अनेक काल दिखाई नहीं देते। भूतकाल - अद्यतन, ह्यस्तन

और ह्यस्तन का प्रयोग नहीं होता - ये काल अपभ्रंश में समाप्त हो गये थे। क्रियातिपत्यर्थ भी अदृश्य हो गया, केवल आसि ((आसीत्)) का ही प्रयोग मिलता है। अपभ्रंश में भूतकाल निष्ठा, प्रत्यय, - क्त के रूपों से बनता है। अपभ्रंश में क्त के - अ, त, इत या ण्ण रूप मिलते हैं। तकार का लोप होने पर "अ" शेष रहता है और "अ" - य श्रुति के कारण "य" बन जाता है। अपभ्रंश में अकारान्त और यकारान्त दोनों प्रकार के रूप मिलते हैं - फुल्लिय, पत्तु, पज्जलिउ, पइट्ठ ((अकर्मक भूतकाल)) णिग्गलिउ ((निर्गलितः)), विज्झाइय(<विध्यापिता) अक्खिय, अवलोइय घत्तिय, पढिय, मुणिअ, चलिअ आदि भूतकालिक क्रियाएं हैं।

क्रियातिपत्ति - अर्थ या हेतुहेतुमद् भूतकाल के अपभ्रंश से अदृश्य होने की बात पहले ऊपर कही गयी है अपभ्रंश में "न्त" के उदाहरण मुणन्तो, धरन्तो, करन्तु, मरंतु आदि मिलते हैं। ये कृदन्त के शतृ - शानच् के विकसित रूप "न्त" के रूप हैं।

घ - विधि अर्थक -

हेमचन्द्र ने सूत्र 387 में इ, उ तथा ए आदेश का विधान किया है उन्होंने लिखा है - पञ्चम्या हि स्वयोरपभ्रंशे इ उ ए इत्येते त्रय आदेशा वा भवन्ति: "

अर्थात् आज्ञा अर्थ में मध्यम पुरूष के एक वचन और बहुवचन में अपभ्रंश की विभक्ति "इ " "उ" और "ए" विकल्प से आदेश होती है।

"इ" "उ" तथा "ए" के अतिरिक्त "हि" "हुं" "उं व्याकरणिक प्रत्ययों का विधान भी मिलता है, किन्तु इनका प्रयोग बहुत कम हुआ है ।

कर्मणि प्रयोग -

अपभ्रंश में "इज्ज" लगाकर परस्मैपद का प्रत्यय बनता है, यथा-प्रथम पुरूष एकवचन - गणिज्जइ, ण्हाणिज्जइ आदि ।

"इय" लगाकर, यथा- पिदि्ठयइ आदि ।

संस्कृत की अनुकृति पर, यथा - वुच्चइ, किज्जइ, दीसइ ।

प्रेरणार्थक अथवा हेत्वर्थक क्रिया

निम्न अनुबंधो के धातु प्रकृति के साथ योग से प्रेरणार्थक का निर्माण होता है -

1- अव = दक्खव, ण्हव , थव - दव , णिम्मव

2- आव = चिंतावइ, वडावइ, दरिसावइ ।

3- अइ = जणइ, दंसइ, अप्पइ, मारइ ।

4- आड = भमाड ।

5- आर = पइसार, वइसार, वद्धार ।

6- आल = देखालइ ।

7- मूल धातु प्रकृति तथा हेत्वर्थक धातु प्रकृति मे अभेद भी है यथा- णासइ, पावइ, डालइ, गमइ ।

8- दोहरे प्रेरणार्थक भी सुलभ हैं । यथा - करारिय, खयारिय, देवारिय, मारारिय ।

कृदन्त काल -

कृदन्त काल को सरलकाल का दूसरा भेद स्वीकार किया गया है। इसके अन्तर्गत भूतकाल, हेतुहेतुमद्भूतकाल तथा भविष्यत्काल विचारणीय है।

(क) भूतकाल -

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में प्रयुक्त निष्ठा प्रत्यय "क्त" के रूपों से अपभ्रंश में त, इत या ण्ण रूप बन गए । जब त के तकार का लोप हुआ तो अ शेष रह गया यही अ, य श्रुति के कारण य हो गया । इस प्रकार अपभ्रंश का कृदन्त भूतकाल अ, इअ, य, इय से बनता है। अकर्मक धातुओं में भूतकाल के जो उदाहरण मिलते हैं, उनमें कर्त्ता के अनुसार लिंग और वचन का प्रयोग पाया जाता है यथा -

मंजरिय चूय फुल्लिय अणंत ।

(मंजरिता: चूता:, फुल्लिता: अनंता ।)

सकर्मक धातुओं में कर्मवाच्य के अनुसार कर्ता करण में और क्रिया कर्मानुसार भी हो जाती है । यथा -

निग्गलिउ असेसु ह तेण हारू ।

(निर्गलित: अशेष: हितेन हार:)

भूतकालीन क्रियाओं के कुछ अन्य प्रयोग अवलोइय, अप्फालिय, अवगन्निय, अप्पहिय, अणुहविय, अणुमन्निय, सरिय, पढिय, उट्ठिय, मुणिअ, चालिउन , गहिअ ।

§ख§ हेतुहेतुमद् भूतकाल -

अपभ्रंश भाषा में हेतुहेतुमद् भूतकाल के लिए -न्त" का प्रयोग होता है । यथा:-

§1§ सो ण करन्तु ।

§2§ असमाहिए सह मरन्तु ।

§3§ णट्ठलोहो मुणन्तो ।

§4§ राओ उग्गिलंतो ।

इसमे करन्तु, मरन्तु, मुणन्तो उग्गिलंतो में -न्त" का प्रयोग दृष्टव्य है ।

§ग§ भविष्यत्काल -

आख्यात प्रयोग के अन्तर्गत उपलब्ध सामान्य भविष्य के अतिरिक्त कृत्य प्रत्यय से भी भविष्यत्काल बनता है । संस्कृत के तव्य प्रत्यय से विकसित होकर इअव्व एवं अव्व रूप निष्पन्न हुए हैं । इसमें कर्मवाच्यता शेष रह गई है और कभी- कभी इसने कर्म के स्त्रीलिंग तथा बहुवचन को भी स्वीकार कर

लिया है यथा-

§1§ राउल को धरब ।

§2§ कहबा कवन उपाए ।

संयुक्त काल -

संयुक्त काल की निष्पन्नता "अत" या "अन्त" भाववाची धातु आछ, हो, रह पर निर्भर करती है। संयुक्त काल के अन्तर्गत धारावाहिक वर्तमान तथा धारावाहिक भूतकाल की गणना की जाती है ।

§क§ धारावाहिक वर्तमान काल -

इस काल में सत्तावाचक सहायक क्रिया या तो अन्त या अत प्रत्यय अन्त होने वाले शब्द के साथ संयुक्त कर देते हैं या उसी अर्थ को सूचित करने वाली पूर्वकालिक क्रिया के साथ मिला देते हैं - जैसे -

§1§ जीभे चाखत आछ § जिह्वया खादन् §न्ती,तृ§ आस्ते । §

§ख§ धारावाहिक भूतकाल -

शतृ के स्थान पर पूर्णकालिक इ का प्रयोग भी इस काल में होता है ।

उदाहरण-

§1§ सहि रहिअउ दुखत्थ ।

§ सहमानो स्थितो दुखस्थाम् ।§

§2§ को तहाँ जोवन्त आछ

§ कस्तत्र भुंजान आसीत् ।§

वाच्य -

अपभ्रंश भाषा में कर्तृवाच्य कीप्रधानता है कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के भी कुछ उदाहरण मिल जाते हैं, किन्तु वे बहुत पुराने ग्रन्थों में ही यत्र- तत्र उपलब्ध है कर्तृवाच्य के प्रयोग बहुत सामान्य है कर्मवाच्य में "इअ" और इज्ज का प्रयोग होता है। ये प्रथम पुरूष वर्तमान काल में ही प्रायः मिलते है ।

उदाहरण -

लाइज्जइ, मुणिज्जई, पुच्छिज्जइ, पढ्िअ, कराविअ इत्यादि ।

भाववाच्य के उदाहरण डॉ0 चाटुर्ज्या के अनुसार अछिअ तथा मोहिअ जैसे शब्द प्रयोग हैं ।

§2§ क्रियार्थक संज्ञा -

अपभ्रंश में एवं §एवड§ अण, अणहँ या अणहिं, आदि से क्रियार्थक संज्ञा का बोध कराया जाता है यथा- एवं या एवड से जोवेवउ, देवं, §दातुम्§ । अण से - पढण, जेवण, अणहं या अणाहिं से - भुज्जणहं, भज्जणाहिं ।

धातु में प्रत्यय योग -

अपभ्रंश में धातु के साथ प्रत्यय के योग का बहुत प्रचलन है। कई ऐसे प्रत्यय हैं जो हर क्रिया में जुड़कर अर्थ बदल देते है । ये विभिन्न अर्थ देने वाले

प्रत्यय वर्तमान एवं कृदन्तों से बनते हैं ।

वर्तमान कृदन्त -

शतृ, प्रत्यय का अपभ्रंश मे अन्त या अन्तम बन जाता है । यथा- करतं, अवमाणियंत, पतसंत, सुणंत, ये पुल्लिंग के उदाहरण है, स्त्रीलिंग में करंतिय, करंती आदि रूप मिलते हैं ।

शानच् का माण रूप बनताहै यथा- पविस्समाण, गच्छमाण, वोयमाण, भूत कृदन्त, - संस्कृत के क्त और क्तवतु , त और तवत्, का प्रयोग अपभ्रंश तक आया है, किन्तु "त" बनकर ही । इसी मे "इअ" और इयअ का रूप भी धारण किया गया है। स्त्रीलिंग में यही "ई" भी बन गयाहै कहीं- कहीं "त" का द्वित्व भी मिल जाता है यथा- पत्त, वुत्त, पहुत्तउ आदि ।

पूर्वकालिक प्रत्यय -

कुछ ऐसे प्रत्यय भी अपभ्रंश की क्रियाओं में जुड़ते हैं, जिन्हें पूर्व-कालिक प्रत्यय कहा जा सकता है ।

इउ इउं - भज्जिउ, णिएउं ।

इवि, अवि - अवलोइवि, परिसेसवि ।

एप्पिणु - जोएप्पिणु

एवि - भणेवि, लग्गेवि ।

एविणु - करेविणु, विहसेविणु

निष्कर्ष -

इस प्रकार अपभ्रंश में क्रिया का विकास संस्कृत की धातुओं से विभिन्न प्रत्यय आदि का योग होकर हुआ है । साथ ही ऐसी क्रियाएं भी स्वतंत्र रूप में विकसित हुई, है जो देशी शब्दावली पर निर्भर हैं, किन्तु नियमावली में परम्परागत व्याकरण का प्रभाव स्पष्टतः व्याप्त है ।

हिन्दी में क्रिया रचना - व्याकरणिक कोटियों के विशेष संदर्भ में -

क्रिया वह पद है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति , वस्तु और स्थान के विषय में विधान किया जाता है । इसीलिए क्रियापद वाक्य में प्रधान विधेय पद है। यह विधान प्रधानतया करने-होने से सम्बन्धित होता है। क्रियापद ही वाक्य का शीर्ष है। बिना क्रिया के कोई वाक्य पूर्ण नहीं हो सकता । क्रियापद के द्वारा ही वाक्य का मुख्यार्थ ज्ञात होता है।

हिन्दी क्रिया में निम्नलिखित आठ व्याकरणिक कोटियों के द्वारा विकार या परिवर्तन होता है ।

§1§ काल § भूत, भविष्य, वर्तमान §

§2§ अर्थ § निश्चयार्थ, संभावनार्थ और आज्ञार्थ §

§3§ अवस्था § सामान्य, पूर्ण, अपूर्ण §

§4§ वाच्य § कर्तृ , कर्म, भाव §

§5§ प्रयोग § कर्तरि, कर्मणि, भावे §

§6§ लिंग §स्त्रीलिंग पुल्लिंग §

§7§ वचन § एकवचन, बहुवचन §

§8§ पुरूष § उत्तम, मध्यम, अन्य §

इस प्रकार के प्रत्ययों § रचनात्मक, व्याकरणिक § को अलग करके क्रिया का जो मूल पद बचता है, उसे ही धातु कहा जाता है। धातु में रचनात्मक

प्रत्यय जोड़कर क्रिया प्रातिपदिक का निर्माण होता है । इस क्रिया- प्रातिपदिक में व्याकरणिक प्रत्यय लगाकर क्रियापद वाक्य में प्रयोगार्थ बनता है। क्रिया- प्रातिपदिक में " ना" जोड़कर क्रिया के सामान्य रूप का निर्माण किया जाता है। यथा- पढ़ना, चलाना, पढ़वाना आदि क्रिया के सामान्य रूप हैं । विशेष व्याकरणिक प्रत्यय लगाने के लिए " ना" को अलग कर दिया जाता है। क्रिया प्रातिपदिक में व्याकरणिक प्रत्यय जुड़ते हैं ।

मानक हिन्दी की क्रिया- रचना संस्कृत, पाली, प्राकृत , अपभ्रंश की अपेक्षा अति सरल है। किन्तु संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय के विवेचन की अपेक्षा क्रिया का विवेचन कुछ कठिन है, क्योंकि क्रिया की व्याकरणिक कोटियाँ अन्य पदों की अपेक्षा अधिक है। क्रिया का विवेचन किस व्याकरणिक कोटि को मूल आधार मानकर किया जाए, यह निश्चय करना सरल नहीं है फिर भी गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि क्रिया को काल के संदर्भ में ही समझा जा सकता है अतएव काल को मूलाधार मानकर ही क्रिया का विवेचन वैज्ञानिक तथा उपयोगी माना जाएगा । इसी काल- रचना के अन्तर्गत ही क्रिया की अवस्था और अर्थ - विचार को सन्निहित कर लेना चाहिए । इसी व्यावहारिता की दृष्टि से कभी- कभी क्रिया रचना को काल - रचना कह दिया जाता है। इस प्रकार 3 काल, 3 अर्थ और 3अवस्था से सम्बन्धित एक तिहरा मापक मानकर मानक हिन्दी के एक क्रियापद के 3 × 3 × 3 = 27 भिन्न रूपान्तर होने चाहिए ।

हिन्दी में काल रचना दो प्रकार से होती है -

(1) मूलकाल - (सामान्य काल) जिसमें क्रिया केवल एक प्रधान धातु से ही निर्मित होती है।

(2) यौगिक या संयुक्त काल - जिसमें क्रियारूप एक प्रधान क्रिया+ सहायक क्रिया से निर्मित होता है।

काल-रचना के दृष्टिकोण से हिन्दी की क्रिया के निम्नलिखित विभाग हो सकते हैं।

<u>साधारण काल या मूलकाल</u>

	उदाहरण	विशेष
(1) सामान्य वर्तमान निश्चयार्थ		मानक हिन्दी में यह रूप नहीं मिलता
(2) सामान्य भूत निश्चयार्थ	वह हँसा	मानक हिन्दी में यह रूप मिलता है
(3) सामान्य भविष्य आज्ञार्थ	वह हँसेगा	" "
(4) सामान्य वर्तमान आज्ञार्थ	वह हँसे	" "
(5) सामान्य भूत आज्ञार्थ		भूत में आज्ञा सम्भव नहीं है।
(6) सामान्य भविष्य आज्ञार्थ	वह हँसेगा	मानक हिन्दी में यह रूप मिलता
(7) सामान्य वर्तमान संभावनार्थ (संभाव्य)	यदि वह हँसे	" " "
(8) सामान्य भूत संभावनार्थ	यदि वह हँसता	" " "
(9) सामान्य भविष्य संभावनार्थ		भविष्य में सम्भावना का रूप नहीं बनता।

इस प्रकार मानक हिन्दी में §1§ सामान्य भूत §2§ सामान्य भविष्य §3§ आज्ञार्थ §4§ सामान्य वर्तमान §5§ भूत संभावनार्थ के रूप मिलते है §6§ सामान्य भूत सेसंभावनार्थ

संयुक्त काल - अपूर्ण §वर्तमानमालिक कृदन्त+ सहायक क्रिया§

§10§	अपूर्ण	वर्तमान	निश्चयार्थ	वह हँसता है	मानक हिन्दी मे यह रूप मिलता है ।
§11§	अपूर्ण	भूत	निश्चयार्थ	वह हँसता था	" " "
§12§	अपूर्ण	भविष्य	निश्चयार्थ	वह हँसता होगा	" " " "
§13§	अपूर्ण	वर्तमान	आज्ञार्थ		मानक हिन्दी मे यह रूप नहीं बनता ।
§14§	अपूर्ण	भूत	आज्ञार्थ		" " "
§15§	अपूर्ण	भविष्य	आज्ञार्थ		" " "
§16§	पूर्ण	वर्तमान	सम्भावनार्थ	अगर वह हँसता हो	मानक हिन्दी मे यह रूप मिलता है ।
§17§	पूर्ण	भूत	सम्भावनार्थ	अगर वह हँसता होता	" " "
§18§	पूर्ण	भविष्य	सम्भावनार्थ		मानक हिन्दी मे यह रूप नहीं बनता ।

पूर्ण - (भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया)

(19)	पूर्ण	वर्तमान	निश्चयार्थ	वह हँसा है ।	मानक हिन्दी में यह रूप मिलत
(20)	पूर्ण	भूत	निश्चयार्थ	वह हँसा था।	" " "
(21)	पूर्ण	भविष्य	निश्चयार्थ	वह हंसा होगा	" " "
(22)	पूर्ण	वर्तमान	आज्ञार्थ		मानक हिन्दी में यह रूप नहीं ब
(23)	पूर्ण	भूत	आज्ञार्थ		" " "
(24)	पूर्ण	भविष्य	आज्ञार्थ		" " "
(25)	पूर्ण	वर्तमान	सम्भावनार्थ	अगर वह हंसा हो	मानक हिन्दी में यह रूप मिलता है ।
(26)	पूर्ण	भूत	सम्भावनार्थ	अगर वह हंसा होता ।	" " "
(27)	पूर्ण	भविष्य	सम्भावनार्थ		मानक हिन्दी में यह रूप सम्भ नहीं है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन में जो रूप नहीं बनते हैं, उन्हें छोड़ कर हिन्दी में 16 कालों (6 + 5 + 5) के भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं। 6 मूल काल या साधारण काल, 5 अपूर्ण अवस्था के तथा 5 पूर्ण अवस्था से सम्बन्धित । उपर्युक्त उदाहरण में केवल अन्य पुरुष, एकवचन पुल्लिंग के रूप ही दिये गये हैं । इसी प्रकार से उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, एकवचन, बहुवचन के रूप हो सकते हैं । उपर्युक्त क्रियारूपों या कालरूपों में जो रूप ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्राचीन संस्कृत

कालों के अवशेष हैं, अर्थात् जो तिङन्त प्रत्यय के योग से बनते हैं, उनमें लिंग के द्वारा रूप-परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि संस्कृत कालों में (तिङ् प्रत्यय लगने पर) लिंग से क्रिया का रूपान्तर नहीं होता है । मानक हिन्दी में ऐसे ही काल-रूप वर्तमान आज्ञार्थ, वर्तमान सम्भावनार्थ हैंजिनमें लिंग - परिवर्तन नहीं होता । शेष समस्त कालों के रूप में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग, दोनों में रूपान्तर होते हैं । मानक हिन्दी की क्रिया- रचना संस्कृत की जटिल क्रिया- रचना का सरलतम रूप प्रस्तुत करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से संस्कृत में एक क्रिया के लगभग 900 भिन्न- भिन्न रूप बनते हैं, जबकि हिन्दी मे केवल 16 रूप मिलते हैं । उनमें से 14 रूपों का जो 2 लिंग, 2 वचन में रूपान्तर हो सकता है। इस प्रकार 14× 2 × 2 × 3 = 168 रूप बने । दो कालों में (जिनमें तिङ् प्रत्यय है) लिंग - परिवर्तन नहीं होता । केवल 2 वचन तथा 3 पुरुष के 6 भिन्न - भिन्न रूप बने तो एक क्रियारूप के 168+ 6 = केवल 174 रूप बने । इनमें पूर्णावस्था के पाँच और अपूर्णावस्था के पाँच कालों के 120 रूप (10 × 3 × 2 × 2 = 120) तो रचना की दृष्टि से अत्यन्त सरल हैं और सहज ही स्मरणीय हैं ।

हिन्दी क्रिया में लिंग - परिवर्तन के लिए केवल एक ही प्रत्यय है- पुल्लिंग में प्रत्यय "आ" अथवा "या" और स्त्रीलिंग मे प्रत्यय "ई" लगता है । यथा - पुल्लिंग- लड़का हंसता है, लड़का हँसा है स्त्रीलिंग - लड़की हँसती है, लड़की हँसी है ।

इसी प्रकार हिन्दी क्रिया- रचना में बहुवचन का रूप बनाने के लिए प्रधान क्रिया में आकारान्त रूप का विकारी प्रत्यय "ए" लगाकर केवल एकारान्त कर देने से और सहायक क्रिया के एकवचन के रूप में केवल अनुस्वार ﴾ं﴿ जोड़ देने से बहुवचन का रूप बन जाता है । यथा- लड़का हँसता है, लड़के हँसते हैं, लड़की हँसती है, लड़कियाँ हँसती हैं ।

इस प्रकार लिंग- वचन - सम्बन्धी रूपान्तर के परिवर्तन अति सरल हैं । अब केवल 16 रूपों का 3 पुरुषों में रूपान्तर भाषा सीखने के लिए अति सरल होगा । इस प्रकार एक क्रिया रूप के केवल 16× 3 = 48 भिन्न-भिन्न रूप ही वक्ता को सीखने पड़ते हैं । संस्कृत के लगभग 900 रूपों के स्थान पर केवल 48 रूपों में सारी क्रिया - रचना को स्मरण रखना भाषा की व्याकरणिक प्रकृति की सरलता, वैज्ञानिकता एवं स्पष्टता का द्योतक है ।

सहायक क्रिया -

हिन्दी क्रिया- रचना में कृदन्त प्रत्ययों से सिद्ध रूप तथा सहायक क्रिया﴾ होना, सकना, रहना आदि﴿ का विशेष महत्व है। सहायक क्रिया के भिन्न-भिन्न कालों में प्रयुक्त रूप ही प्रधान क्रिया के अपूर्ण तथा पूर्ण संयुक्त काल के निर्माण में विशेष सहायक होते हैं । अतएव सहायक क्रिया का विवेचन हिन्दी काल - रचना के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।

वर्तमान निश्चयार्थ - होना (धातु - हो)

	एकवचन	बहुवचन
उ०पु०	(मैं) हूँ	(हम) हैं
म० पु०	(तू) है	(तुम) हो
अ० पु०	(वह) है	(वे) हैं

भूत निश्चयार्थ

	एकवचन	बहुवचन
उ०पु०	था	थे
म०पु०	था	थे
अ० पु०	था	थे

भविष्य निश्चयार्थ

	एकवचन	बहुवचन
उ०पु०	हूँगा	होंगे
म०पु०	होगा	होंगे
अ० पु०	होगा	होंगे

वर्तमान आज्ञार्थ

उ०पु०	हूँ(होऊँ)	हों (होएँ, होवें)
म०पु०	हो	हो
अ०पु०	हो	हों (होवें, होएँ)

वर्तमान संभावनार्थ

उ०पु०	(अगर मैं) हूँ	हों
म०पु०	(अगर तू) हो	हो
अ०पु०	(अगर वह) हो	हों

भूत संभावनार्थ

उ०पु०	(अगर मैं) होता	होते
म०पु०	(अगर तू) होता	होते
अ०पु०	(अगर वह) होता	होते

विशेष -

मानक हिन्दी के आदि तथा मध्य काल में "भूत" धातु का सहायक क्रिया के रूप में प्रयोग मिलता है, किन्तु आज यह प्रयोग नहीं मिलता ।

कृदन्त

क्रिया में प्रत्यय लगाकर जिस पद से विशेषण संज्ञा, क्रिया- विशेषण का कार्य लिया जाता है, उसे कृदन्त, कहा जाता है। क्रिया में जो प्रत्यय लगता है, उसे "कृत्" प्रत्यय कहते हैं और "कृत्" प्रत्यय जिस पद के अन्त में होता है, उसे ही कृदन्त ("कृत्" है अन्त में जिसके) पद कहते हैं ।

हिन्दी क्रिया - रचना में कृदन्तों का महत्वपूर्ण योगदान है हिन्दी में प्रमुखत: निम्नलिखित कृदन्त अधिक प्रसिद्ध हैं -

§1§ वर्तमानकालिक कृदन्त -

धातु में "ता" "ती" "ते" जोड़कर वर्तमानमकालिक कृदन्त के रूप बनते हैं । यथा - पढ़ता पढ़ती, पढ़ते आदि । इस कृदन्त के बाद होना क्रिया का रूप लगाकर अपूर्ण काल §संयुक्त § के रूप बनते हैं । यथा- लिखता है, लिखता था, लिखता होगा , लिखता होता, आदि । मूल §सामान्य§ कालों में भूत संभावनार्थ के रूप भी मिलते हैं, यथा - अगर वह हंसता, लिखता, पढ़ता , चलता आदि ।

विशेषण -

किसी संज्ञा के पूर्व वर्तमानकालिक कृदन्त का रूप विशेषण का कार्य करता है। यथा- हँसता बालक, हँसती बालिका। कभी-कभी वर्तमानकालिक कृदन्त और संज्ञा के बीच "हुआ" हुई" भी जोड़ देते है । यथा- हँसता हुआ बालक , तैरती हुई नाव आदि ।

§2§ भूतकालिक कृदन्त -

धातु में "आ" "या" § पुल्लिंग §ई §स्त्रीलिंग§ जोड़कर भूतकालिक कृदन्त के रूप बनते हैं । यथा- गया, बैठा , उठा, चला, हंसा, गयी, चली , हँसी आदि ।

विशेषण -

भूतकालिक कृदन्त के प्रत्यय "आ" "ई" लगाकर जो रूप बनता है वह रूप जब किसी संज्ञा के पहले आता है, तब विशेषण का कार्य करता है। यथा- पढ़ा

पाठ, पढ़ी पुस्तक । कभी- कभी "पढ़ा" के पश्चात् "हुआ" और "पढ़ी" के पश्चात् "हुई " जोड़ देते हैं । यथा- पढ़ा हुआ पाठ; पढ़ी हुई पुस्तक ।

क्रिया-

भूतकालिक कृदन्त से मूल कालों में से भूतकालिक भूत निश्चयार्थ के रूप बनते हैं यथा- वह चला, गया, हँसा । आकारान्त भूत निश्चयार्थ हिन्दी क्रिया- रचना की प्रमुख विशेषता है। हिन्दी का भूतकालिक"आ" प्रत्यय हिन्दी क्रिया की प्रमुख विशेषता और उसकी प्रकृति का अभिन्न अंग है।

§3§ क्रियार्थक संज्ञा -

धातु में "ना" प्रत्यय जोड़कर उसे संज्ञा की भाँति प्रयोग किया जाता है । यथा हँसना, चलना आदि । क्रियार्थक संज्ञा एक प्रकार से आकारान्त संज्ञा की भाँति होती है। अतएव आकारान्त संज्ञा- सम्बन्धी सारे परिवर्तन क्रियार्थक संज्ञा में होते हैं । इसके विकारी रूप § पढ़ने, हँसने§ के बाद कारक परसर्ग लगते हैं ।

"ना" में अन्त होने वाली क्रियार्थक संज्ञा हिन्दी की अपनी विशेषता है। "ना" प्रत्यय हिन्दी की निजी प्रकृति है ।

§4§ कर्तृवाच्य -

क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप में "वाला" "हारा" आदि प्रत्यय लगाव कर्तृवाच्य कृदन्त के रूप में बनते हैं । यथा- हँसनेवाला, चलने वाला । सामासिक

शब्दों में " वाला" शब्द कहीं- कहीं "वाल" हो जाता है यथा- रखवाला या रखवाल ।

§5§ पूर्वकालिक -

मानक हिन्दी में पूर्वकालिक कृदन्त का बोध कराने के लिए कभी धातु में शून्य प्रत्यय, कभी "कर" प्रत्यय और कभी "करके" प्रत्यय जोड़ा जाता है और उससे क्रियाविशेषण का कार्य लिया जाता है । यथा-

किताब पढ़ वह चला गया - धातु + 0

किताब पढ़ कर वह चला गया- धातु + कर

किताब पढ़ करके वह चला गया - धातु + करके

आकारान्त, ओकारान्त औरईकारान्त धातुओं तथा पूर्वकालिक प्रत्यय के बीच एक "य्" का आगम होता है यथा- खायके, लायके, होयके, देयके = खाकर, लाकर, होकर, देकर आदि ।

§6§ वर्तमान क्रियाद्योतक -

वर्तमानकालिक के रूप में विकारी प्रत्यय "ए" जोड़कर वर्तमान क्रियाद्योतक के रूप बनते हैं । और क्रियाविशेषण की भांति इनका प्रयोग किया जाता है। यथा- उसे खेलते खेलते दो घंटे हो गये। वर्तमानकालिक कृदन्त मे भी बहुवचन में एकारान्त रूप बन जाता है, किन्तु वर्तमान क्रियाद्योतक का एकारान्त रूप विकारी प्रत्यय "ए" सहित है और क्रियाविशेषण का कार्यकरता है। इस कृदन्त के बाद कभी-कभी "हुए" जोड़ देते हैं । यथा- उसे खाते हुए एक घंटा हो गया, उसे पढ़ते हुए चार घंटे हो गये ।

§7§ भूत क्रियाद्योतक -

धातु रूप में विकारी प्रत्यय "ए" जुड़ता है जैसे पढ़े §उसे पुस्तक पढ़े हुए तीन घंटे हो गये §। इस कृदन्त के बाद कभी-कभी "हुए" जोड़ देते हैं। यथा- विशेष क्रियापद में - उसे पढ़े हुए कई साल हो गये।

तात्कालिक कृदन्त -

वर्तमान क्रियाद्योतक रूप में अवधारण बोधक "ही" जोड़कर तात्कालिक कृदन्त के रूप बनते हैं। इससे क्रिया विशेषण का कार्य लिया जाता है। यथा- छींकते ही नाक कटी; असावधानी करते ही दंड मिला।

उपर्युक्त कृदन्तीय विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि हिन्दी की काल-रचना में कृदन्तों का § विशेषतः वर्तमानकालिक कृदन्त और भूतकालिक कृदन्त का विशेष योग है। इन्हीं कृदन्तीय प्रत्ययों से निर्मित क्रियाओं में ही लिंग भेद होता है। वर्तमानकालिक का "ता" तथा भूतकालिक कृदन्त का "आ";"या" से अन्त होना हिन्दी §खड़ी बोली§ की अपनी विशेषता है।

वाच्य -

क्रिया के जिस रूप से उसका मुख्य वाच्य §कथ्य, उद्देश्य§ जाना जाता है, उसी रूप को वाच्य कहा जाता है। क्रिया का विधान कभी कर्ता के लिए, कभी कर्म के लिए और कभी भाव के लिए किया जाता है। इसलिए हिन्दी में क्रिया के तीन वाच्य माने जाते हैं -

§1§ कर्तृवाच्य §2§ कर्मवाच्य §3§ भाववाच्य

§क§ कर्तृवाच्य -

क्रिया के जिस रूप में यह जाना जाता है कि क्रिया का मुख्य वाच्य अथवा उद्देश्य कर्ता है, उसे कर्तृवाच्य कहते हैं । अर्थात्, कर्तृवाच्य में कर्ता क्रिया का व्याकरणिक कर्त्ता § जिसके विषय में विधान किया जाए § और वास्तविक कर्त्ता § जो क्रिया को करने वाला है § दोनों होता है यथा- §1§ लड़का गया, §2§ ज्ञान ने पुस्तक पढ़ी, §3§ लड़की ने लड़के को बुलाया ।

प्रथम वाक्य में मुख्य विशेष्य लड़का, दूसरे में ज्ञान तथा तीसरे वाक्य में लड़की है और यही वास्तविक कर्त्ता भी है अतएव यहाँ कर्तृवाच्य है, क्योंकि तीनों कामों का मुख्य उद्देय और क्रिया का वास्तविक कर्त्ता एक ही है, भले ही बाद के दो वाक्यों में कर्मणि प्रयोग है, क्योंकि क्रिया का लिंग-वचन कर्म के अनुसारहै ।

§ख§ कर्म वाच्य -

कर्मवाच्य व वाच्य हैं जिसमें प्रमुखत: कर्म के विषय में विधान किया जाता है । कर्म का उद्देश्य या वाच्य होता है । एक प्रकार से कर्म ही व्याकरणि कर्ता होताहै, भले ही क्रिया का वास्तविक कर्त्ता कोई अन्य हो । जहाँ कथन में कर्ता की अपेक्षा कर्म पर अधिक बल दिया जाताहै, वहाँ वास्तविक कर्त्ता या तो लुप्त कर दिया जाता है या करण कारक के प्रत्यय " से" § द्वारा सहित§

के साथ आता है । यथा-

§विद्यार्थी से § पुस्तक पढ़ी गयी या पढ़ी जाती है ।

§पुलिस से § चोर पकड़ा गया या पकड़ा जाता है ।

§भूखे से § रोटी खायी गयी या खायी जाती है।

कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य - रचना विधि -

कर्मवाच्य में कर्म की उपस्थिति अनिवार्य है। अतएव कर्मवाच्य केवल सकर्मक किया में ही संभव है। हिन्दी में वियोगात्मक रूप से कर्मवाच्य रूपों का रूपान्तर किया जाता है §1§ जिस काल §अर्थ, लिंग, वचन§ में कर्तृवाच्य की मुख्य क्रिया होती है, उसी काल में मुख्य क्रि या के साथ "जाना" क्रिया का रूप जोड़ा जाता हैं §2§ कर्त्ता को करण कारक की स्थिति में रख दिया जाताहै, §3§ मुख्य क्रिया सदैव भूतकालिक कृदन्त के रूप में आ जाती है यथा-

विद्यार्थी ने पुस्तक पढ़ी- कर्तृवाच्य § विद्यार्थी से§ पुस्तक पढ़ी गयी ।

भूखे ने रोटी खायी, § भूखे से § रोटी खायी गयी ।

पुलिस चोर पकड़ती है, § पुलिस से§ चोर पकड़ा जाता है।

छात्र पुस्तक पढ़ता है, § छात्र से § पुस्तक पढ़ी जाती है।

भाववाच्य -

क्रिया के जिस रूप से भाव की §कर्त्ता या कर्म की नहीं § प्रधानता

व्यक्त हो, उसे भाववाच्य कहते हैं । इस प्रकार के कथन में मुख्य उद्देश्य कोई कर्त्ता या कर्म नहीं, बल्कि किसी भाव - मात्र का कथन होताहै । यथा-

§1§ थके पथिक से रास्ता चला नहीं जाता है।

§2§ चिंतित व्यक्ति से सोया नहीं जाता है ।

§3§ दुःखी आदमी से हँसा नहीं जाताहै ।

कर्तृवाच्य से भाववाच्य बनाने की विधि कर्मवाच्य की ही भाँति है । अन्तर केवल इतना ही है कि कर्मवाच्य केवल सकर्मक क्रिया से बनता है, जबकि भाव वाच्य सदैव अकर्मक क्रिया से ही निर्मित होता है ।

<u>प्रयोग -</u>

हिन्दी में वाच्य और प्रयोग एक ही नहीं है। वाच्य का सम्बन्ध क्रिया के मुख्य उद्देश्य या कथ्य से है, जबकि प्रयोग का सम्बन्ध क्रिया और कर्त्ता-कर्म के § लिंग- वचन सम्बन्धी § अन्वय § प्रयोग- सम्बन्ध § से है । इस दृष्टि से हिन्दी में तीन प्रयोग हैं -

§1§ कर्त्तरि प्रयोग §2§ कर्मणि प्रयोग §3§ भावे प्रयोग

<u>§क§ कर्त्तरि प्रयोग -</u>

कर्त्तरि प्रयोग में क्रिया कालिंग वचन सदैव कर्त्ता की हीभाँति होता.है।यथा -

§1§ लड़का पुस्तक पढ़ता है ।

§2§ लड़कियाँ पुस्तक पढ़ती हैं ।

उपर्युक्त दोनों वाक्यों में क्रिया का वचन तथा लिंग कर्त्ता के अनुसार है ।

§ख§ कर्मणि प्रयोग -

कर्मणि प्रयोग में क्रिया का लिंग- वचन मुख्य कर्म के अनुसार होता है । यथा -§1§ लड़के ने रोटी खायी §2§ माँ ने दूध पिलाया ।

प्रथम वाक्य में "लड़के" पुल्लिंग होने पर भी "खायी" क्रिया स्त्रीलिंग, एकवचन में है, क्योंकि " रोटी, एकवचन, स्त्रीलिंग है इसी प्रकार दूसरे वाक्य में माँ §कर्त्ता§ स्त्रीलिंग है, लेकिन क्रिया पुल्लिंग है क्योंकि कर्म "दूध पुल्लिंग है ।

कर्मणि प्रयोग साहित्यिक मानक हिन्दी की विशिष्टता है। यह विशेषता हिन्दी प्रदेश के समस्त साहित्यकारों में मिलती है ।

प्रेरणार्थक क्रिया -

क्रिया के जिस रूप से यह जाना जाए कि क्रिया के करने की प्रेरणा कर्त्ता को किसी अन्य से मिली है, उस क्रियारूप को प्रेरणार्थक क्रिया कहा जाता है । प्रेरणार्थक क्रिया में किसी अन्य को कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है, अतएव क्रिया सकर्मक में ही रहती है। इसीलिए अकर्मक क्रिया से जब प्रेरणार्थक रूप बनता है, तब वह भी सकर्मक बन जाती है । हिन्दी धातु में "आ" रचनात्मक प्रत्यय जोड़कर प्रेरणार्थक रूप बनाये जाते हैं। कभी-कभी इसी प्रेरणार्थक रूप में "वा" रचनात्मक प्रत्यय लगाकर फिर एक दूसरा प्रेरणार्थक

रूप बनाया जाता है। तात्पर्य यह होता है कि प्रथम प्रेरणार्थक में तो क्रिया के लिए किसी दूसरे ने प्रेरणा की है और जब प्रथम प्रेरणार्थक रूप में "वा" रचनात्मक प्रत्यय जोड़कर दूसरा प्रेरणार्थक रूप बनाया जाता है तो इसका तात्पर्य यह है कि प्रथम प्रेरक को किसी अन्य व्यक्ति (तीसरे) ने प्रेरित किया ।

कुछ क्रियारूपों को छोड़कर मानक हिन्दी में प्राय: प्रत्येक क्रिया-धातु में "आ" जोड़कर प्रथम प्रेरणार्थक और "वा" जोड़कर द्वितीय प्रेरणार्थक के रूप बनते हैं । द्वितीय प्रेरणार्थक का रचनात्मक प्रत्यय "वा" जुड़ने से प्रथम प्रेरणार्थक का दीर्घ "आ" ह्रस्व हो जाता है यथा-

पढ़ना	पढ़ा - ना	पढ़वाना
लिखना	लिखा - ना	लिखवाना
सुनना	सुना- ना	सुनवाना
चलना	चला- ना	चलवाना
उठना	उठा - ना	उठवाना

कभी- कभी कुछ प्रथम प्रेरणार्थक तथा द्वितीय प्रेरणार्थक के रूप मिथ्या होते हैं । यथा- काटना, खुलना, बँधना, पिसना आदि में "आ" जोड़कर- काटना, खोलना, बाँधना, पसीना, आदि प्रथम प्रेरणार्थक के रूप प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में ये रूप प्रेरणार्थक के रूप न होकर स्वाभाविक क्रिया के रूप हैं और कटना, खुलना, आदि काटना, खोलना आदि के

कर्मवाच्य के रूप हैं । यथा-

लकड़हारा पेड़ काटता है- लकड़हारे से पेड़ कटता है या काटा जाता है

नौकर द्वार खोलता है- नौकरी द्वारा खुलता है या खोला जाता है।

पुलिस चोर को बाँधती है- पुलिस से चोरबँधता है या बांधा जाता है

इसी प्रकार " वा" लगने पर कुछ क्रियाएं वास्तव में द्वितीय प्रेरणार्थक नहीं कही जा सकतीं, क्योंकि उनका प्रथम प्रेरक स्वयं कार्य नहीं करता है । इस प्रकार प्रथम प्रेरणार्थक और द्वितीय प्रेरणार्थक के अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता, यद्यपि रूप से वे दोनों प्रथम और द्वितीय प्रेरणार्थक प्रतीत होती हैं।

करना	कराना	करवाना
देना	दिलाना	दिलवाना
धुलना	धुलाना	धुलवाना
रोना	रूलाना	रूलवाना

द्वितीय प्रेरणार्थक के रूप मिथ्या है, क्योंकि उनका धर्म प्रथम प्रेरणार्थक से भिन्न नहीं है।

कुछ अकर्मक क्रियारूपों- आना, जाना, होना के प्रेरणार्थक रूप नहीं बनते हैं ।

संयुक्त क्रिया

जब दो या दो से अधिक प्रधान क्रियाएँ मिलकर एक क्रिया का

अर्थ व्यक्त करती हैं, तब क्रियाओं के ऐसे संयोग को संयुक्त क्रिया की संज्ञा दी जाती है । संयुक्त काल में भी दो क्रियाओं का योग होता है, इसलिए कुछ लोग उसे भी संयुक्त क्रिया कहते हैं । रचना और अर्थ, दोनों दृष्टियों से संयुक्त काल और संयुक्त क्रिया में अन्तर है। संयुक्त काल में एक प्रधान और एक सहायक क्रिया का संयोग होता है । जबकि संयुक्त क्रिया में दो या दो से अधिक प्रधान क्रियाओं का संयोग होताहै । संयुक्त काल में प्रधान क्रिया और सहायक क्रिया के मेल से केवल काल का बोध होता है; मुख्य क्रिया जो अर्थ व्यक्त करती है, वही अर्थ प्रधान होता है; किन्तु संयुक्त क्रिया में दोनों प्रधान क्रियाएं मिलकर एक नये अर्थ को व्यक्त करती हैं। यथा- उठा था, उठता था, उठ रहा था । इसमें "उठ" मुख्य क्रिया है और "था" आदि केवल सहायक क्रियाएं हैं और काल का बोध कराती हैं । जबकि " उठ बैठा" संयुक्त क्रिया में दोनों क्रियाएँ अलग-अलग प्रधान क्रियाएँ बन सकती हैं, फिर भी इनकें पहली क्रिया प्रधान क्रिया होती है और दूसरी क्रिया सहायक क्रिया के रूप में काल का बोध कराती है । इस प्रकार " उठना" और "बैठना" यद्यपि दोनों प्रधान क्रियाएं हैं और दोनों एक-दूसरे की विरोधी हैं, क्योंकि "उठना" और "बैठना" दोनों विरोधी अर्थ रखने वाली क्रियाएं हैं, फिर भी यहाँ दोनों क्रियाएं मिलकर एक बिल्कुल ही नया अर्थ देती हैं जो अकेले "उठना" से किसी प्रकार व्यक्त नहीं हो सकता है। "उठा", "उठा था", "उठता" था में वह बल नहीं हैजो "उठ बैठा" में है ।

दो क्रियाओं के संयोग में जब प्रथम कृदन्तीय क्रिया की प्रधानता होती है और द्वितीय प्रधान क्रिया यहाँ सहायक क्रियाबनकर केवल काल का बोध कराती है, तभी संयुक्त क्रिया की रचना होती है। यदि दोनों क्रियाओं के संयोग में प्रथम क्रिया (कृदन्तीय) की प्रधानता न हो, बल्कि दूसरी क्रिया की प्रधानता हो तो वहाँ साधारण क्रिया ही कही जाएगी - संयुक्त क्रिया नहीं। यथा - " हो गया " में " हो" क्रिया की प्रधानताहै और "गया" क्रिया केवल काल का बोध कराती है, अतएव संयुक्त क्रिया है; इसी प्रकार " उठ बैठा" में " उठ" क्रिया की प्रधानता है और "बैठा" काल बोधक क्रिया है अतएव यहाँ भी संयुक्त क्रिया मानी जाएगी।

किन्तु " वह दौड़ गया"," वह भाग गया" आदि में प्रथम कृन्दतीय क्रिया की प्रधानता नहीं है, बल्कि अंतिम क्रिया" गया" की ही प्रधानताहै। एक प्रकार से "दौड़- भाग" क्रियाएं "गया"ही की विशेषता बतलाती हैं। अतएव यहाँ संयुक्त क्रिया नहीं होगी। इससे सिद्ध होता है कि संयुक्त क्रिया का होना या न होना बहुत कुछ वाक्य के अर्थ पर आधारित है। अतएव यह कहना उचित है कि संयुक्त क्रिया का अंतिम निर्णय वाक्य - स्तर पर ही हो सकता है।

कुछ लोग संयुक्त क्रिया को क्रिया- वाक्यांश मानते हैं, क्योंकि एक से अधिक पद कहीं भी मिलकर जब एक अर्थ व्यक्त करते हैं तब उसे वाक्यांश माना जाता है और संयुक्त क्रिया में दो क्रियापद मिलकर एक ही अर्थ व्यक्त

करते हैं । इस दृष्टि से उन्हें क्रिया- वाक्यांश मानने में कोई आपत्ति नहीं है । किन्तु संयुक्त क्रिया को क्रिया मानना ही अधिक विवेकशील लगता है, क्योंकि दोनों क्रियाएँ मिलकर एक ऐसा नया अर्थ देती हैं जो एक- एक वाक्यांश से नहीं व्यक्त होता है। "जाने में लगा" और "जाने लगा" दोनों के अर्थ में सूक्ष्म अन्तर है प्रथम से अपूर्णता और दूसरे से आरम्भ प्रतीत होता है । अतएव संयुक्त क्रिया को क्रिया के साथ ही रखना उपयोगी तथा वैज्ञानिक है। एक प्रकार से दो प्रधान क्रियाओं के योग से एक क्रिया का समस्त पद बन जाता है । दोनों का अलग-अलग अर्थ न होकर दोनों के मेल से ही एक नया समन्वित अर्थ व्यक्त होता है, जबकि वाक्यांश में दो- दो पद मिलते हैं, उनका अलग-अलग पदार्थ होता है और वाक्यांश का अर्थ उन्हीं दो पदार्थों का अर्थ - संयोग होता है । इस प्रकार संयुक्त क्रिया और क्रिया- वाक्यांश में वही अन्तर है जो एक समन्वित अर्थ और अर्थ- संयोग में होता है।

रूप या रचना की दृष्टि से संयुक्त क्रियाओं को निम्नलिखित आठ वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

	उदाहरण
1- वर्तमानकालिक कृदन्त+ अन्य क्रिया	परिश्रम से धन बढ़ता गया ।
2- भूतकालिक कृदन्त + अन्य क्रिया	वह पढ़ा करता है।
3- क्रियार्थक संज्ञा + अन्य क्रिया	वह हँसने लगा ।
4- पूर्वकालिक कृदन्त + अन्य क्रिया	वह उठ बैठा।
5- अपूर्ण क्रियाद्योतक + अन्य क्रिया	ऋषि-मुनि सत्य वचन कहते आ

6- पूर्ण क्रियाद्योतक + अन्य क्रिया — सात दिन तक काम में लगे रहें।

7- संज्ञा विशेषण + अन्य क्रिया — उसने बात स्वीकार कर ली।
  (नामबोधक)[1]

8- पुनरूक्त संयुक्त क्रिया+ अन्य क्रिया (समान क्रिया का द्वित्व रूप)

संयुक्त क्रिया में अधिकांशतः जो सहकारी क्रियाएँ आती हैं और जिनमें कालबोधक प्रत्यय लगता है, वे निम्नलिखित हैं -

सहायक क्रिया- रहना, चुकना, सकना होना।

प्रधान क्रिया - आना, उठना, बैठना, करना, चाहना, जाना देना, लगना, लेना, पाना, बनना, पड़ना आदि।

चुकना, सकना के अतिरिक्त उपर्युक्त क्रियाएं कृदन्तीय क्रिया के रूप में आकर स्वयं प्रधान क्रिया के रूप में होकर दूसरी अन्य क्रियाओं के साथ संयुक्त क्रिया का निर्माण कर सकती हैं।

1- नाम बोधक संयुक्त क्रिया में जो भी संज्ञा या विशेषण पद क्रिया के साथ संयुक्त होता है, वह संज्ञा और विशेषण उसका अभिन्न अंग बन जाता है। वाक्य के किसी अन्य पद से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वह पद फिर किसी का कर्त्ता या कर्म नहीं हो सकता। यथा-"उसने भोजन किया" में "भोजन" "किया" के साथ संयुक्त होने पर भी किया का कर्म है और 'उसने से सम्बन्धित है अतएव भोजन किया संयुक्त क्रिया नहीं हो सकती है किन्तु उसने बात स्वीकार कर ली "संयुक्त क्रिया है क्योंकि इसमे स्वीकार केवल "कर ली" से सम्बन्धित है। उसका अन्य पदों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वाक्य का कर्त्ता" उसने"और "कर्म""बात" है।

संयुक्त क्रियाएं अनेक प्रकार के अर्थ व्यक्त करती हैं - यथा-
आरम्भ, अनुमति, अवकाश, नित्यता, तत्परता, निश्चय, अभ्यास, इच्छा,
अवधारण, शक्ति, पूर्णता, आवश्यकता, योग्यता, विवशता, निरन्तरता
आदि ।

अपभ्रंश और हिन्दी क्रिया रचना की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन

अपभ्रंश और हिन्दी की क्रिया संबंधी व्याकरणिक कोटियों की तुलनात्मक समीक्षा करने से हमें यह ज्ञात होता है कि व्याकरणिक दृष्टिकोण से अपभ्रंश और हिन्दी का निकटतम सम्बन्ध है बिना किसी सन्देह के कहा जा सकता है कि हिन्दी की अधिकांश व्याकरणिक कोटियों का विकास अपभ्रंश की व्याकरणिक कोटियों से हुआ है। यह अवश्य है कि संस्कृत- पालि - प्रा में व्याकरणिक कोटियाँ संयोगात्मक थीं । अपभ्रंश की व्याकरणिक कोटियाँ भी संयोगात्मक है। किन्तु अपभ्रंश की प्रवृत्ति वियोगात्मक की ओर बढ़ रही है।

क्रिया रचना में जो सरलीकरण की प्रवृत्ति पालि- प्राकृत से आरम्भ हुई उसका चरम विकास हिन्दी में मिलता है। संस्कृत - पालि - प्राकृत अपभ्रंश की तुलना में हिन्दी की क्रिया रचना सरलतम है। क्रिया में §1§ काल §2§ अर्थ §3§ अवस्था §4§ वाच्य §5§ प्रयोग §6§ लिंग §7§ वचन §8§ पुरूष की व्याकरणिक कोटियाँ होती हैं । इन व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि सभी हिन्दी की व्याकरणिक कोटियाँ अपभ्रंश व्याकरणिक कोटियों का विकास है ।

वर्तमान कालिक कृदन्त -

अपभ्रंश में वर्तमानकालिक कृदन्त द्योतक व्याकरणिक प्रत्यय "अत्" जैसे - लिख > लिखत, पठ > पठत, चल > चलत । हिन्दी में धातु में "ता" या "अता" लगाकर वर्तमानकालिक कृदन्त बनते हैं । जैसे- लिखता, पढ़ता,

चलता । इस प्रकार मानक हिन्दी में वर्तमान कालिक कृदन्त के व्याकरणिक प्रत्यय का अपभ्रंश से निकटतम सम्बन्ध हैं ।

भूतकालिक कृदन्त -

आधुनिक मानक हिन्दी में भूतकालिक कृदन्त की रचना धातु में "आ" लगाकर बनती है । जैसे- हसा, चला, बैठा, अपभ्रंश में भूतकालिक कृदन्त घोतक व्याकरणिक प्रत्यय "इअ्" जैसे लगाकर बनता है । जैसे- लिखिअ या लिखिय । मानक हिन्दी का व्याकरणिक प्रत्यय "आ" इसी अपभ्रंश प्रत्यय का विकास है ।

क्रियार्थक संज्ञा -

मानक हिन्दी में क्रियार्थक संज्ञा का निर्माण धातु में "ना" प्रत्यय लगाकर बनता है। जैसे- हँस+ ना = हँसना, चल + ना = चलना । अपभ्रंश में क्रियार्थक संज्ञा का प्रत्यय "अण" है जैसे -लिख + अण = लिखण दोनों की तुलना से हमें ज्ञात होता है कि हिन्दी क्रियार्थक संज्ञा का व्याकरणिक प्रत्यय "ना" अपभ्रंश का व्याकरणिक प्रत्यय "अण" का ही विकसित रूप है ।

सरल काल :

सामान्य भूत निश्चयार्थ -

सामान्य भूत निश्चयार्थ की व्याकरणिक कोटि "आ" {पुल्लिंग} "ई" स्त्रीलिंग है। अपभ्रंश सामान्य भूत की व्याकरणिक कोटि "इअ", "इय"

का विकसित रूप है अपभ्रंश की व्याकरणिक कोटि - "इअ" "इय" में मानक हिन्दी की प्रवृत्ति का द्योतक दीर्घ के लग जाने से "इआ", "इया" निरूपति हो जाते हैं । (उदाहरणार्थ - अप० पढ़िअ, प्राचीन मानक हिन्दी पढ़िआ> पढ़िया > पढ़्या > पढ़ा) ।

सामान्य भविष्य निश्चयार्थ -

सामान्य भविष्य निश्चयार्थ की व्याकरणिक कोटि आधुनिक मानक हिन्दी "गा" है। भविष्य (यथा - पढ़ेगा, चलेगा, चलेगी आदि) मानक हिन्दी का अपना निजी विकास है। अपभ्रंश में भविष्य काल की व्याकरणिक कोटि "ह", "स" प्रवृत्ति द्योतक है । (यथा- चलहिइ, चलिसइ) । अपभ्रंश से विकसित इसी चलिहै> में चलइ>मे>हैं । मानक हिन्दी का "गा" प्रत्यय जोड़कर चलहिगा, चलेगा रूप विकसित हुए । मानक हिन्दी का भविष्य प्रत्यय "गा" संभवत: "गत: > गआ > गा" से विकसित हुआ । मानक हिन्दी में "गा" मानक हिन्दी की प्रमुख विशेषता है और भविष्य प्राचीन मानक हिन्दी, मध्यकालीन मानक हिन्दी और आधुनिक मानक हिन्दी में समान रूप से मिलता है ।

सामान्य वर्तमान संभावनार्थ -

यदि वह हँसे के रूप के विकास की कोई समस्या नहीं है तो यह अपभ्रंश कालीन वर्तमान काल के रूप (हँसइ> हँसै > हँसे) का ही विकास है।

---

1 देखिए प्रोफेसर माताबदल जायसवाल- मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण

सामान्य भूत संभावनार्थ -

यदि वह हँसता-"हँसता" का रूप अपभ्रंश के कृदन्तीय रूप हँसत में मानक हिन्दी की प्रमुख प्रवृत्ति "आ" को जोड़कर विकसित हुआ है ।

संयुक्त काल -

वर्तमानकालिक कृदन्त तथा भूतकालिक कृदन्त से निर्मित 10 संयुक्त के दसों रूपों के रूप विकास की कोई समस्या नहीं है। वर्तमानकालिक कृदन्त "हँसता, चलता" तथा भूतकालिक कृदन्त हँसा के रूपों के विकास क्रम के इस शोध प्रबन्ध के गतपृष्ठों में स्पष्ट कर दिया गया है।

लिंग -

लिंग संबंधी व्याकरण कोटि का विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के संज्ञा प्रकरण में किया गया है। क्रिया में तिङ. क्रियाओं से विकसित कालों में संस्कृत की भाँति लिंग परिवर्तन नहीं होता । (यथा- वह लड़का चले, वह लड़की चले) कृदन्तों से निर्मित मूलकालों संयुक्त कालों में पुल्लिंग में व्याकरणिक प्रत्यय "ई" जोड़कर लिंग परिवर्तन किया जाता है । (यथा- लड़का जाता है, लड़की जाती है) इस विकास का अपभ्रंश से निकटतम व्याकरणिक संबंध हैं ।

वचन -

वचन संबंधी व्याकरणिक कोटि का विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के संज्ञा प्रकरण में किया गया है । वचन बोधक मुख्य व्याकरणिक प्रत्यय "ए"

जोड़कर एकवचन बोधक क्रिया रूप को बहुवचन बोधक रूप निर्मित किया जाता है। ﴾यथा- लड़का जाता है, लड़के जाते हैं﴿। कहीं कहीं केवल "अनुस्वार" ं मात्र से बहुवचन का बोध कराया जाता है। ﴾ यथा- लड़का जाता है, लड़के जाते हैं ﴿ बहुवचन बोधक ए और ं का अपभ्रंश से निकटतम संबंध है।

वाच्य -

अपभ्रंश में कर्म वाच्य और भाव वाच्य बोधक ﴾ व्याकरणिक प्रत्यय "इअ" "इज्जइ" है जो संयोगात्मक हैं हिन्दी में कर्मवाच्य एवं भाववाच्य बोधक व्याकरणिक प्रत्यय का विकास अपना निजी है। कर्मवाच्य का निर्माण मुख्य क्रिया को भूतकालिक कृदन्तीय रूप + जाना क्रिया के योग से होता है। ﴾यथा - लड़के से पुस्तक पढ़ी जाती है ﴿। इस प्रकार दो क्रियाओं के संयोग से कर्म वाच्य का विकास मानक हिन्दी में होता है। अपभ्रंश के "इज्जइ" से संभवत: आदरार्थ आज्ञा के रूपों का विकास हुआ है। यथा- पढ़िज्जइ > पढ़िए, लिखिज्जइ > लिखिए।

पूर्वकालिक कृदन्त -

जैसा कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के गत पृष्ठों में विवेचित हुआ है। अपभ्रंश में इउ, इउं, इवि, अवि, एप्पिणु, एवि, एविणु जोड़कर पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराया जाता है।

सातवाँ - अध्याय

अव्यय

सातवाँ – अध्याय

अपभ्रंश में अव्यय

आधुनिक व्याकरण-पद्धति पर अव्यय के चार भेद हैं – §1§ क्रिया विशेषण §2§ सम्बन्धक सूचक §3§ संयोजक §4§ भाव बोधक । अपभ्रंश में प्रयुक्त क्रिया विशेषण 1- संज्ञा 2- सर्वनाम और 3- प्राचीन क्रियाविशेषण पर आधारित है ।

संज्ञा पर आधारित क्रिया विशेषण- चिरु, थिरु, णिमिसद्धु, णिरारिउ, इत्थंतरि , दरि, णिच्छइ, तुरिय, सव्वावर, पुणि, जणु, जणि ।

सर्वनाम पर आधारित क्रिया विशेषण – कउ < कुतः, केत्थु < कुत्र, केम < कथं, तो < ततः, तदा, तेत्थु < तत्र, तेम < तथा ।

प्राचीन क्रियाविशेषण पर आधारित – पच्छइं < पश्चात्, अवसु < अवश्यम्, उप्परि < ऊँपर, उपर < उपरि, अज्ज < अज्जु, आज < अद्य: भीतर < अभ्यन्तर, एक्ट्ठ < एकत्र ।

अर्थ – विधान के आधार पर अपभ्रंश के क्रिया विशेषणों को 1- कालवाची, 2- देशवाची, 3- रीतिवाची और 4- विविधवाची में विभाजित कर सकते हैं ।

1- कालवाची क्रिया विशेषण –

जाम, जाउं, जामहिं यावत् § = जब तक §, ताम, ताउं,

तामहिं < तावत् § = तब तक §, पच्छइ < पश्चात् , एम्वहिं <

इदानीम, जब्बे, तब्बे, कव्वे < कदा, आज < अज्जु < आज<अद्य,

सइ § सदा§ आदि ।

2- देशवाची क्रिया विशेषण -

1- जेत्थु, जत्तु, जेत्थ, जित्थु, जेतहे, एतहे के अनुकरण पर, जेतहिं,

जहिं = यत्र § जहाँ, जहाँ § ।

2- तेत्थु, तत्तु, तित्थु, तत्थ, तेत्तहे, तेत्तहि, तेत्तहि,

तहि = तत्र § तहाँ, तहाँ§ ।

3- केत्थु, कत्थ, कत्थइ, कित्थु, कहिं = कुत्र §कहाँ कहाँ §

4- कउ, कहन्तिहु = कुत: §कहाँ से §

5- एत्थु = अत्र (यहाँ)

6- तो = तत: §तो§,

7- एत्तहे = इत:,

8- उप्परि < उपरि:

9- भीतर < अभ्यन्तर,

10- पच्छइ, पीछे <पश्चात्

11- बाहर, बाहिर, बाहिरू<बहि: ,

12- नियर < निकट, पास < पार्श्व

13- कया < कदा: कइयावि < कदापि ।

3- रीति या प्रकार वाचो क्रिया विशेषण -

1- केम, किम, किह, किध, केवँ, केव, किमि, किम्ब, केमइ,

2- जेम, जिम, जिह जिध, जिम्व, जिवँ, जेवँ, जेहउं, जहाँ, जेहा= यथा,

3- तेम , तिम, तिह, तिध, तहरि, तेहि, तहा, तेहा= तथा,

4- अवरोप्परू < परस्पर,

5- प्राउ, प्राइव, प्राइम्ब, पग्गिम्ब = प्रायः,

6- समाणु < समम् ﴾ साथ﴿,

7- एम्ब < एवम्, एम्बइ < एवम्

8- पर < परम् ﴾केवल﴿,

9- समाणुं < समम् ﴾ साथ﴿,

10- मणाउं < मनाक् ﴾ थोड़ा﴿

11- झडित्ति, झडति, झत्ति < झटिति= ﴾शीघ्र ﴿

12- छुडु = क्षिप्र,

13- तरू < त्वरा ﴾ शीघ्र﴿,

14- दडवड, उवत्ति, दडति = शीघ्र,

15- बहिल्ल = शीघ्र ,

16- दिवे - दिवे = दिवा ﴾दिन﴿,

17- पुणु = पुनः,

18- फुडु < स्फुटम् ,

19- सणिउं = शनैः,

20- लहु = शीघ्र , अधिक,

21- सज्ज < सद्यः = तत्काल,

22- निरारिउ = अतिशयम् आदि ।

4- विविध वाची क्रिया विशेषण -

इय, इउ, इअ < इति, सइं < स्वयम्, त्रिणु,

विणु < विन्न ।

परसर्गों के विवेचन में सम्बन्धवाचक अव्यय देख लिये जा सकते हैं तथा संयोजक अथवा समुच्चयवाचक अव्यय समुच्चयार्थ में सम्मिलित है ।

भावबोधक अव्यय -

सम्बोनार्थक अव्ययों की चर्चा पहले की जा चुकी है । "ह" शुद्ध प्राणध्वनि की समीपवर्तीध्वनि है अस्तु सम्बोधन या भाव बोधन "हो", 'अहो', 'अहा' "हाहा"आदि के द्वारा ही अधिक सम्भव है । संस्कृत से अपभ्रंश तक ऐसा ही पाया जाता है । अधिक प्रचलित अव्यय निम्न हैं -

अहु, अहो, अहोहु, उहु < अहो

हउं, हउं = हाहा

अहह

हहा, हाहा

छि छि, थू थू

हुहुरू, घुग्घु, गग्गर = गद्गद, , जज्जर < जर्जर आदि को शब्दानुकरण एवं चेष्टानुकरण के अंतर्गत भो वैयाकरणों ने विवेचित किया है ।

हिन्दी में अव्यय

जिन पदों में सामान्यतया लिंग, वचन, कारक, पुरूष, संबंधी कोई विकार नहीं होता है, उन्हें अव्यय कहा जाता है । रूप और अर्थ की दृष्टि से अव्यय चार प्रकार के होते हैं -

1- क्रिया विशेषण

2- सम्बन्ध सूचक

3- समुच्चयबोधक

4- विस्मयादिबोधक

क्रिया विशेषण -

क्रिया विशेषण वह पद है जो {काल, स्थान, रीति, परिणाम- सम्बंधी} विशेषताओं का बोध कराकर क्रिया को व्याप्ति को मर्यादित करता है । जिस प्रकार विशेषण पद, संज्ञा, सर्वनाम की विशेषता प्रकट करताहै, उसी प्रकार क्रिया विशेषण पद क्रिया की विशेषता व्यक्त करता है। रचना की दृष्टि से क्रिया विशेषण दो वर्गों में वर्गीकृत हो सकते हैं -

1- सार्वनामिक क्रियाविशेषण

2- अन्य {मूल क्रियाविशेषण}

सार्वनामिक क्रिया विशेषण -

रचना की दृष्टि से सार्वनामिक क्रिया विशेषण सार्वनामिक विशेषणों की भाँति सर्वनाम { निश्चय, सम्बन्ध, प्रश्नवाचक } से बनते हैं। अर्थ की दृष्टि से ये कई वर्गों में वर्गीकृत हो सकते हैं -

मूल सर्वनाम	कालवाचक	स्थान	रीतिवाचक
यह	अब	यहाँ, इधर	यों
वह	.	वहाँ, उधर	.
जो	जब	जहाँ, जिधर	ज्यों
सो	तब	तहाँ, तिधर	त्यों
कौन	कब	कहाँ, किधर	क्यों

जिस प्रकार मूल सर्वनामों में अवधारणबोधक "ही" संयुक्त हो जाताहै { यथा - यही, वही }, उसी प्रकार सार्वनामिक क्रिया-विशेषणों के साथ भी अवधारणबोधक "ही" संयुक्त हो जाता है। यथा-

अब + ही = अभी कब + ही = कभी यहाँ + ही = यहीं

जब-+ही = जभीं वहाँ + ही = वहीं तब + ही = तभी

उपर्युक्त क्रियाविशेषणों में " कभी" और "कहीं" अवधारण का बोध न कराकर किसी समय या स्थान का बोध कराते हैं।

कभी-कभी ये क्रियाविशेषण कारक चिन्ह अपने साथ लेकर संज्ञा का कार्य करते हैं।

यथा- अब से, जब से, यहाँ से, यहाँ का आदि।

कबका, तबका, कब से, तब से आदि ।

उधर को, इधर को, कहाँ को, वहाँ को आदि ।

सार्वनामिक विशेषण विशेष्य रूप में आकर क्रियाविशेषण का कार्य करते हैं। यथा- ऐसे, जैसे, कैसे, तैसे, वैसे आदि

इतने में, जितने में, कितने में, उतने में आदि ।

मूल सर्वनाम -

काल, स्थान, रीति और परिणाम का बोध कराने के लिए कुछ मूल क्रियाविशेषणों का प्रयोग होता है।

काल वाचक -

आज, कल, परसों, तरसों, आजकल, बाद, सवेरे, तड़के, सदैव, बारम्बार, हमेशा, फिर, प्रायः आदि ।

स्थानवाचक -

आगे, पीछे, ऊँचे, नीचे, सामने, पास, निकट, अलग, इस ओर, दाहिने, बायें आदि ।

परिमाणवाचक -

परिणामवाचक विशेषण जब क्रिया या विशेषण के पूर्व आते हैं तब उन्हें ही परिणामवाचक विशेषण की संज्ञा दी जाती है ।

यथा -	अत्यन्त उत्तम	कुछ खराब	अधिक अच्छा
	कम अच्छा	बहुत कुछ	सब कुछ

रीतिवाचक -

गुण की रीति, पद्धति व्यक्त करने वाले पद । यथा- अकस्मात्, सहसा, अचानक, क्रमशः, धीरे से, जल्दी, सुखेन, दुःखेन, अवश्य, ठीक, सचमुच, व्यर्थ, ध्यानपूर्वक, यथाशक्ति, फटाफट, वस्तुतः दरअसल, जरूरत आदि ।

स्वीकार बोधक -

हाँ, जी, ठीक, सच ।

निषेध -

नहीं, न, मत ।

अवधारण -

ही, भी, भर, तब, तो, मात्र ।

इस प्रकार मूल क्रियाविशेषण जो इन सभी भाषाओं ने अपभ्रंश, प्राकृत, पाली या संस्कृत से लेकर स्वयं विकसित किया है, उनमें अन्तर नहीं है ।

सम्बन्ध सूचक -

संबंध सूचक वे अव्यय पद (शब्द या शब्दांश) हैं, जो किसी संज्ञा के बाद आकर उसका सम्बन्ध अन्य पदों से व्यक्त करते हैं । अंग्रेजी आदि भाषाओं में ये सम्बन्धसूचक संज्ञा के पूर्व आते हैं, किन्तु हिन्दी में

ये सभी संज्ञा के बाद आते हैं, अतएव इन्हें परसर्ग ही कहा जा सकता है । अधिकांशतः सम्बन्धसूचक अव्यय पूर्ण शब्द या शब्दांश होते हैं । हिन्दी परसर्ग (ने, को, से मैं, पर, का) आदि एक प्रकार के आरम्भ में सम्बन्ध सूचक अव्यय पद ही रहे होंगे । कालक्रमेण ध्वनि - परिवर्तन के कारण ये पद घिस-पिट कर इतने सूक्ष्म हो गये हैं कि अब उन्हें पूर्ण शब्द कहने में संकोच होता है। इसलिए इन कारक परसर्गों को संबंध सूचक अव्यय न कहकर अब केवल कारक परसर्ग कहकर ही बोध कराया जाता है और यही वैज्ञानिक भी प्रतीत होता है । मानक हिन्दी की व्याकरणिक परम्परा भी इन्हें सामान्य संबंधसूचकों से अलग करके संज्ञा की व्याकरणिक कोटियों के रूप में संज्ञा के प्रसंग में विवेचित करती है जब कि सामान्य संबंध- सूचकों का विवेचन अव्यय के प्रसंग में क्रियाविशेषण के बाद किया जाता है।

हिन्दी में संबंधसूचक पद अधिकांशतः कारक विभक्तियों (प्रधानतः संबंध कारक- का, के) के बाद आते हैं । कभी- कभी इन विभक्तियों का लोप भी रहता है। हिन्दी के व्याकरण- ग्रन्थों में सम्बन्ध सूचकों की लम्बी तालिका मिलती है । किन्तु वास्तव में मानक हिन्दी में मूल सम्बन्ध सूचक बहुत ही कम हैं । संज्ञा, क्रियाविशेषण ही सम्बन्ध कारक परसर्ग के पश्चात् आकर जब उसका सम्बन्ध वाक्य के अन्य पदों से जोड़ते हैं, तब उन्हें संबंधसूचक कहा जाता है । इसलिए एक ही पद कभी क्रिया विशेषण, कभी प्रत्यय, कभी संबंध सूचक बन जाता है। यथा-

तुम्हें पहले आना चाहिए । §क्रियाविशेषण§ तुम्हें उससे पहले आना चाहिए ।
-§ सम्बन्ध सूचक §

एक आदमी तक उसके दुःख मनानेको नहीं गया। §क्रिया-
विशेषण§ वह गाँव तक गया है । § सम्बन्ध सूचक §

इस प्रकार सम्बन्धसूचकों का निर्णय पदात्मक स्तर पर निश्चयत: न होकर वाक्य - स्तर पर प्रयोग से ही हो सकताहै। हिन्दी में तद्भव, तत्सम § संस्कृत§ और विदेशी अनेक प्रकार के संबंधसूचक प्रचलित हैं । उदाहरणार्थ कुछ सम्बन्ध सूचकों को तालिका प्रस्तुत है ।

तद्भव - पास, सामने, आगे, पीछे, लिए, पहले, भरोसे आदि।
तत्सम - प्रति, निकट, सदृश, अपेक्षा, विपरीत, तुल्य, अतिरिक्त
आदि ।
विदेशी - नजदीक, बदौलत, तरह, खिलाफ़, वास्ते, सिवा,
अलावा आदि ।

समुच्चयबोधक -

समुच्चयबोधक अव्यय वे पद हैं , जो दो पदों, दो वाक्यांशों तथा दो वाक्यों को मिलाते हैं । ये अव्यय पद क्रिया§ विशेषण, क्रियाविशेषण§ को विशेषता बताकर दो वाक्यों को जोड़ते हैं। कुछ सर्वनाम, विशेषण तथा क्रियाविशेषण भी दो वाक्यों के सम्बन्ध जोड़ते हैं और समुच्चयबोधक के

समान कार्य करते हैं । यथा -

जो लड़का आया था, वह चला गया ।

जब वह आएगा तब मैं जाऊँगा ।

जैसा तुम करोगे, वैसा ही फल पाओगे ।

रूप और अर्थ, प्रयोग आदिकी दृष्टि सेसमुच्चयबोधक प्रायः दो प्रकार के हैं -

§1§ समानाधिकरण §2§ व्याधिकरण

समानाधिकरण -

समानाधिकरण समुच्चय वे समुच्चय है जो समान वाक्यों को जोड़ते हैं । अर्थ केअनुसार इन्हें निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं -

§क§ संयोजक - और,तथा,एवं,भी ।

§ख§ विभाजक- या, वा, अथवा, किंवा, कि, या- या, चाहे - चाहे न - न, नहीं तो ।

§ग§ विरोध दर्शक - पर, परन्तु, किन्तु, लेकिन, बल्कि, वरना , मगर।

§घ§ परिणामदर्शक - इसलिए, सो,अत:,अतएव ।

व्याधिकरण -

व्याधिकरण समुच्चय पदों के द्वारा एक वाक्य के प्रधान तथा आश्रित उपवाक्य जोड़े जाते हैं । अर्थ की दृष्टि से इनके भी कई भेद होते हैं -

§क§ कारण वाचक- क्योंकि, जोकि, इसलिए, कि ।

§ख§ उद्देश्य वाचक- कि, जो, ताकि, इसलिए, कि ।

§ग§ संकेत वाचक - जो, तो, यदि तो, यद्यपि, तत्काल, चाहे, परन्तु कि

§घ§ स्वरूप वाचक - कि, जो, अर्थात्, याने, मानो ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी ने एक स्वतंत्र भाषा की भाँति लगभग एक हजार वर्षों में अपने समुच्चयबोधक अव्यय भी विकसित किये हैं ।

विस्मयादिबोधक अव्यय -

विस्मयादिबोधक अव्यय वे पद हैं जिनसे वक्ता के विस्मय आदि तीव्र मनोविकारों को व्यक्त किया जाता है । वास्तव में तीव्र मनोविकार सूचक इन पदों का वाक्य के किसी अन्य पद से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता है । बल्कि यह कह सकते हैं कि जब वक्ता के वाक्यगत पद उसके तीव्र भाव को व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं तो अपनी तीव्र भावनाओं को व्यक्त करने के लिए वह कई प्रकार से इन विस्मयादिबोधक पदों का सहारा लेता है। अधिक संगीतात्मक या सुराघात देकर वह इन विस्मयादिबोधक पदों कोबोलता है और अपने उन तीव्र मनोभावों को व्यक्त करता है जिन्हें वह उतनी तीव्रता के साथ वाक्य में आये किसी पद से नहीं व्यक्त करता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ये विस्मयादिबोधक अव्यय अपने में एक पूर्ण भाव व्यक्त करते हैं और पूर्ण भाव व्यक्त करने के कारण वाक्य के समकक्ष हैं। अतएव जहाँ सामान्य भाषा

भाव को प्रयुक्त करने के लिए समाप्त हो जाती है वही विस्मयादिबोधक अव्यय प्रयुक्त होते हैं । फिर भी भाषा में पदों के विवेचन के साथ- साथ विस्मयादिबोधक पदों का विवेचन करने की परम्परा हिन्दी व्याकरण ग्रन्थों में पायी जाती है ।

ये विस्मयादिबोधक पद जब किसी को पुकारने या सम्बोधन करने के लिए किसी संज्ञा के पूर्व लगाये जाते हैं, तब वाक्य में इनका विशेष महत्व होता है और इन्हें एक प्रकार से संबोधन कारक का परसर्ग माना जाता है । यथा- हे राम, अरे बालक, ओ लड़की । प्रस्तुत सन्दर्भ में "हे","अरे," "ओ" सम्बन्ध कारकीय परसर्ग का कार्य करते हैं ।

प्रमुख विस्मयादिबोधक पद निम्नलिखित हैं -

§क§	विस्मय -	ओह ! हैं ! हे ! अरे ! ओहो ! क्या !
§ख§	हर्ष -	वाह-वा ! शाबाश ! आहा: ! धन्य-धन्य !
§ग§	शोक -	हा ! आह ! हाराम ! बाप रे बाप ! आय रे ! दय्यारे ! ओफ ! शोक ! मरा रे !
§घ§	तिरस्कार-	छि ! हट ! अरे ! धिक्कार !चुप ! थू -थू !
§ङ§	स्वीकार -	हाँ, जी हाँ ! अच्छा ! ठीक ! बहुत अच्छा !
§च§	निषेध -	नहीं ! कदापि नहीं !

उपर्युक्त पदो में से अनेक पद, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया हैं । जब उन्हें अधिक सुराघात देकर विस्मयादिबोधक की भाँति प्रयोग किया जाता है, उसस्थिति में ये विस्मयादिबोधक पद कहे जायेंगे ।

कभी- कभी उपर्युक्त विस्मयादि पदों की संज्ञा की भाँति प्रयोग किया जाता है । यथा -

तुम्हें धिक्कार से मैं हतोत्साह नहीं हो सकता ।

जनता के जयजयकार से नेता प्रफुल्लित हो गया ।

वास्तविक विस्मयादिबोधक पद तो एक प्रकार से विश्वजनीन हैं । जैसे - शिशु के कुछ शब्द, यथा- मामा, पापा, डैडी, अम्मा, आदि इसी प्रकार वास्तविक विस्मयादि पद भी हैं, हाँ जो विस्मयादि पद संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण क्रिया से बनते हैं । वे अवश्य अलग-अलग भाषाओं में अलग अलग सत्ता रखते हैं और ऐसे ही पदों से भावों की विस्मयादिबोधक प्रकृति का पता लगता है, क्योंकि शेष पद तो लगभग सर्वत्र ही मिलते हैं ।

आठवाँ - अध्याय

निष्कर्ष अथवा उपसंहार

आठवाँ अध्याय

निष्कर्ष अथवा उपसंहार -

अपभ्रंश और हिन्दी के व्याकरणिक कोटियों के तुलनात्मक दृष्टि से हमें ज्ञात होता है कि अपभ्रंश एक संयोगात्मक वियोगात्मक भाषा है । जबकि हिन्दी एक पूर्णतः वियोगात्मक भाषा है तात्पर्य यह है कि अपभ्रंश में व्याकरणिक कोटियाँ मूल पद के साथ अधिकांशतः संयुक्त हो जाती है जब कि हिन्दी में मूल पद से अलग होकर भिन्न-भिन्न बनी रहती है ।

संज्ञा के तुलनात्मक दृष्टि से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि लिंग, वचन कारक की व्याकरणिक कोटियों में कुछ रूप तो अपभ्रंश की व्याकरणिक कोटियों के अवशेष है और कुछ हिन्दी में नया विकास हुआ है ।

अपभ्रंश मध्यकालीन आर्य भाषा की अन्तिम कड़ी है जबकि हिन्दी आधुनिक आर्य भाषा है ।

अपभ्रंश में तीन लिंग है जबकि हिन्दी में दो लिंग है

अपभ्रंश में संस्कृत पालि प्राकृत की भाँति तीन लिंग थे पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग । हिन्दी में नपुंसक लिंग लुप्त हो गया ।

अपभ्रंश में लिंग निर्णय कुछ तो स्वाभाविक है और कुछ व्याकरणिक । हिन्दी में व्याकरणिक लिंग ही मिलता है अर्थात् हिन्दी में लिंग निर्णय स्वाभाविक न होकर अन्तिम ध्वनि के अनुसार अथवा लोक परम्परा के अनुसार होता है ।

प्राकृत अपभ्रंश के वैयाकरण हेमचन्द्र, मार्कण्डेय, त्रिविक्रम आदि अपभ्रंश को लिंग व्यवस्था की कठिनाई को जानकर यह मानते है कि अपभ्रंश में लिंग अतंत्र है। दामोदर पंडित (बारहवीं तेरहवीं शताब्दी) लिंग निर्णय को लोकमत पर आधारित मानते हैं ।

हिन्दी में अपभ्रंश की भांति लिंग निर्णय को अतंत्र नही कहा जाता । मानक हिन्दी में लिंग के निश्चित प्रत्यय विकसित हो गए है।

संस्कृत में विशेषण का लिंग और वचन विशेष्य के अनुसार होता है जैसे - सुन्दरी भार्या अपभ्रंश मे यह नियम कुछ शिथिल हो गया और हिन्दी में यह नियम बदल ही गया अर्थात् हिन्दी में विशेष्य के अनुसार लिंग, वचन नहीं बदलता केवल अकारान्त शब्दों में अपवाद है। जैसे- अच्छा लड़का अच्छी लड़की

अपभ्रंश में लिंग परिवर्तन साधारणतया मिलता है। जैसे- पुल्लिंग का स्त्रीलिंग में प्रयोग, स्त्रीलिंग का पुल्लिंग में प्रयोग इसे लिंग-विपर्यय कहते है । जैसे- "अब्भा, लग्गा, डुंगरिहिं" में अपभ्रंश नपुसंक लिंग का पुल्लिंग के रूप में प्रयुक्त हुआ ।

इसी प्रकार "पाइ विलग्गी अंत्रडी" में अन्त्रम् नपुसंक का अंत्रडी स्त्रीलिंग रूप बन गया।

" गय - कुम्भइँ दारन्तु " में कुम्भ: पुल्लिंग का कुम्भइं नपुसंकलिंग रूप है ।

" पुणु डालइं मोडन्ति" स्त्रीलिंग का नपुसंकलिंग रूप है संस्कृत में विशेषण का लिंग और वचन, विशेष्य के अनुसार ही, होता है । अपभ्रंश

में यह अनुशासन नहीं है,

"तुहु विरहग्गि किलंत "

गोरड़ी दिट्ठी मग्गु निअन्त "

अपभ्रंश में संबंध वाचक वियोगी प्रत्यय कर, केर, केरक के लगने से "सम्बन्धी" का लिंग वचन नहीं बदलता । किन्तु हिन्दी मे संबंधवान के, का के, की जो संबंध कारक प्रत्यय है। संबंधवान के अनुसार इनमें लिंग और वचन परिवर्तन होता है। जैसे इनका लड़का, इनकी लड़की, इनके लड़के ।

अपभ्रंश में आ, ई, ऊ में लिंग सम्बन्धी कोई कठिनाई नही है। अपभ्रंश में सब स्त्रीलिंग है । हिन्दी में कुछ ही शब्दो में ऐसा पाया जाता है । मानक हिन्दी आकारान्त भाषा कहलाती है। इसके अधिकांश आकारान्त शब्द पुल्लिंग होते है । जैसे- लड़का, घोड़ा बछड़ा आदि ।

हिन्दी में कुछ ही एकाध शब्द है जिनमे "आ" "इका" लगाकर स्त्रीलिंग बनाया जाता है । जैसे छात्र < छात्रा, अध्यापक < अध्यापिका ।

हिन्दी में ईकारान्त शब्द अधिकांशतः स्त्रीलिंग है जैसे घोड़ी, रानी आदि । हिन्दी का यह "ई" प्रत्यय संस्कृत के "टाप् " प्रत्यय(ङ•ीप और ङ•ीष०(का विकसित रूप है।

अपभ्रंश में कोमलता, लघुता या हीनता को बोधित करने के लिए स्वार्थिक "डी" प्रत्यय (हेम० 8/4/431(का प्रयोग होता है। जैसे गोरडी, अन्तडी, कुडुल्ली इत्यादि । आ० भा० आ० हिन्दी आदि में थाली, झाड़ी लकडी आदि इसी प्रकार के अपभ्रंशो के रूप हैं ।

अपभ्रंश में अकारान्त रूप भी स्त्रीलिंग का बोध कराते है जैसे- बहू

हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति चली आयी है ।

जिस प्रकार मानक हिन्दी आकारान्त कहलाती हैं और इसमें अधिकांशत पुल्लिंग का ही द्योतक है उसी प्रकार अपभ्रंश में उकारान्त शब्द अधिकांशत: पुल्लिंग होते हैं ।

जिस प्रकार प्राकृत में ओकारान्त शब्द पुल्लिंग होते है उसी प्रकार अपभ्रंश में उकारान्त पद पुल्लिंग होते है । जबकि मानः हिन्दी में आकारान्त शब्द पुल्लिंग होते है ।

अपभ्रंश में संस्कृत में कृदन्त प्रत्यय शतृ {अन्त}, शानच् {माण} प्रत्ययान्त से भी विशेषण लिंग का बोध कराते हैं । जैसे - " कवि वर रमणि... जलपवाह पवंहंति "

अपभ्रंश में पुल्लिंग शब्द उकारान्त है ।

जैसे-	अप0		हि0
	फुल्लु	>	फूल
	फलु	>	फल
	अन्नु	>	अन्न

हिन्दी में स्त्रीलिंग के प्रमुख प्रत्यय निम्नलिखित है । "ई" जैसे- लड़की, नदी

गत पृष्ठों में स्पष्ट कर दिया गया है कि संस्कृत प्रत्यय {टाप्}

"ई" (ङ·ीप् और ङ·ीष्) से विकसित हुआ है ।

अपभ्रंश में भी "इ" प्रत्यय स्त्रीलिंग का बोधक है लेकिन हिन्दी का "इ" प्रत्यय हिन्दी और संस्कृत दोनों के प्रभाव से विकसित हुआ है।

"इआ", "इया" ये दोनों प्रत्यय संस्कृत के स्त्रीलिंग प्रत्यय "इका" से विकसित हुए है ।

प्राकृत, अपभ्रंश का इस प्रत्यय पर विशेष प्रभाव नही है ।

हिन्दी स्त्रीलिंग प्रत्यय इन , नी, आनी, आइन आदि रूप प्रयुक्त होते है ।

हिन्दी में "इन" प्रत्यय का नया विकास हुआ है। कहा यह जाता है संस्कृत नपुसंक लिंग प्रत्यय" आनी" का अपभ्रंश से आइन बना। इसी से "इन" और "नी" आदि स्त्रीलिंग प्रत्यय विकसित हो गये ।

इस प्रकार लिंग प्रत्यय के दृष्टिकोण से हिन्दी के कुछ स्त्रीलिंग प्रत्यय अपभ्रंश से विकसित हुए है और कुछ का स्वतंत्र विकसित अन्य श्रोतों से हुआ इस प्रकार अपभ्रंश में संयोगात्मक प्रत्यय और हिन्दी में वियोगात्मक प्रत्यय हैं ।

अपभ्रंश और हिन्दी की बहुवचन सम्बन्धी व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश के बहुवचन प्रत्यय अधिकांशतः संयोगात्मक है जबकि हिन्दी के प्रत्यय अधिकांशतः वियोगात्मक है । हिन्दी के प्रमुख बहुवचन प्रत्यय - शून्य प्रत्यय, ए प्रत्यय, एँ प्रत्यय,

याँ प्रत्यय, ॅ प्रत्यय, ॅ प्रत्यय, ओं प्रत्यय, कुछ विदेशी प्रत्यय । उपर्युक्त ये सारे प्रत्यय वियोगात्मक परसर्ग है। दृष्टान्त निम्नलिखित है ।

लड़का > लड़के

बात > बातें

लड़की > लड़कियाँ

गुड़िया > गुड़ियाँ

है > हैं

लड़का > लड़कों

अपभ्रंश के अधिकांश प्रत्यय संयोगात्मक है ।

जैसे- 0, उ, ओ, हिं

हं, हुं, तिं, हो

अहिं, अइं, ऐं

अपभ्रंश और हिन्दी दोनो में शून्य प्रत्यय का प्रयोग होता है। हिन्दी में जैसे- यह कहार क्या कर रहे है । अपभ्रंश मे - " ए कहार काह संपाडति ।

हिन्दी के बहुवचन प्रत्यय "ए" का अपभ्रंश में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता विद्वानों का मत है कि प्राकृत अपभ्रंश काल के कई प्रत्ययों से मिलकर हिन्दी का "ए" प्रत्यय विकसित हुआ है। अपभ्रंश में बहुवचन प्रत्यय "अहि" , "अइ" अनेक स्थलों पर मिलता है सम्भावना यही प्रतीत होती है कि ए प्रत्यय इसी "अहि" "अइ" का विकसित रूप है ।

"एं" बहुवचन का सम्बन्ध संस्कृत प्रत्यय " आनि" और अपभ्रंश प्रत्यय "आइं " से है ।

"यॉं " बहुवचन प्रत्यय संस्कृत के नपुंसक लिंग "आनि" प्रत्यय फिर अपभ्रंश से "आइं" "यॉं" से विकसित हुआ है।

अपभ्रंश बहुवचन प्रत्यय ं अनुस्वार का ही शेष है ।

हिन्दी के विकारी रूप बहुवचन के प्रत्यय "ओं" का सम्बन्ध संस्कृत के षष्ठी बहुवचन "आनाम्" से विकसित हुआ है । इसी आनाम से अपभ्रंश में "अन्न", "आनि" "न्ह" तथा " अहु" से "ओ" "ओं " प्रत्यय निकला है ।

इस प्रकार अपभ्रंश बहुवचन प्रत्यय और हिन्दी बहुवचन प्रत्यय की तुलना से निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अधिकांशतः हिन्दी बहुवचन प्रत्यय अपभ्रंश बहुवचन प्रत्यय के विकसित रूप है ।

संज्ञा की व्याकरणिक कोटियों में कारक की व्याकरणिक कोटि हिन्दी और अपभ्रंश दोनों में महत्वपूर्ण है अपभ्रंश में कारक विभक्तियाँ अधिकांशतः संयोगात्मक है कहीं-कहीं वियोगात्मक है जबकि हिन्दी में कारक चिन्ह, कारक परसर्ग अथवा कारक विभक्ति अधिकांशतः वियोगात्मक है कहीं- कहीं ही संयोगात्मक है। हिन्दी के प्रमुख कारक चिन्ह "ने" (कर्ता) "को" (कर्म) "से" (करण), "को, के लिए " (सम्प्रदान) "से" (अपादान) "का", "के" "की" (सम्बन्ध) "में, "पर" (अधिकरण)आदि प्रमुख कारक विभक्तियाँ हैं । यह कारक परसर्ग अधिकांशतः अपभ्रंश के कारक विभक्तियों

के विकसित रूप है ।

हिन्दी कारक विभक्ति "ने" अपभ्रंश विभक्ति नइँ > नइ अथवा तणइ से विकसित है । इस "ने" का विकास भी तृतीया विभक्ति के रूप से माना जाता है, जैसे तृतीया विभक्ति का एक रूप है - "एन" यथा- देवेन" । विद्वानों का मत है कि ध्वनि- विपर्यय द्वारा "एन" ही "ने" हो गया किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन हिन्दी के ध्वनि परिवर्तनों के अनुकूल नहीं बैठता है। उक्त "ने" का विकास "ले" से भी माना जाता है लग्य> लग्गिओ लगि > लइ > ले, ने ।

कर्म "को" विभक्ति को अपभ्रंश "कउ" से सम्बन्धित है।

इसी प्रकार सम्प्रदान "के लिए" विभक्ति अपभ्रंश के लग्गइ > लग्गइ से विकसित हुई है। करण और अपादान " से" की विभक्ति अपभ्रंश की सतु> सतिं > सतउ से सम्बन्धित है। डॉ0 उदयनारायण तिवारी इसका विकास सम - एन से मानते हैं - सम > एन > सएँ , सई > सैं > से ।

सम्बन्ध "का" "के" "की" विभक्ति का सम्बन्ध अपभ्रंश की केर > केरअ > कर से है। केरउ पुल्लिंग में और केराइं नपुंसकलिंग में तथा केरी का स्त्रीलिंग में रूप है और के का विकृत रूप ।

अधिकरण"में" का सम्बन्ध अपभ्रंश की "मइ" तथा पर का सम्बन्ध अपभ्रंश में उवरि>उपरि से है।

हिन्दी में " मुझे, "हमे" संयोगात्मक कारक विभक्ति है "मुझे" का सम्बन्ध "मुज्झे" से, "हमें" का सम्बन्ध "हम्ह" से है।

इस प्रकार अपभ्रंश और हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की कारक विभक्तियों का सम्बन्ध सीधा अपभ्रंश की कारक विभक्तियों से है ।

बहुत से विद्वान हिन्दी सर्वनामों का सम्बन्ध सीधा संस्कृत से जोड़ते है पर यह बहुत दूर की कल्पना है भाषा विकास की दृष्टि से किसी परवर्ती भाषा का विकाससूत्र उसकी पूर्वज भाषा में होता है, इसलिए अपभ्रंश से ही हमें हिन्दी के विकास के अध्ययन को शुरू करना चाहिए । हिन्दी सर्वनामों का अपभ्रंश से सीधा सम्बन्ध है।

अपभ्रंश और हिन्दी के विशेषणों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पूर्णसंख्यावाचक अपूर्ण संख्यावाचक आवृत्ति वाचक के रूप विकसित होकर हिन्दी संख्या विशेषण रूपों में विकसित होकर हिन्दी विशेषण रूपों में व्यक्त हुए है । अपभ्रंश में विशेषण कहीं-कहीं विशेष्य के अनुसारलिंग, वचन, कहीं कहीं स्वतंत्र हो गया है धीरे-धीरे यही पद्धति हिन्दी में विकसित हो गयी । हिन्दी में अब विशेष्य के अनुसार विशेषण के लिंग, वचन, कारक नहीं होते अथवा यूँ कहें कहीं विशेष्य के लिंग, वचन, कारक के अनुसार विशेषण में परिवर्तन नहीं होता ।

पूर्णांक विशेषण -

है। तिण्णि, चउ, बारह>दुवारह, पंद्रह> पण्णरह आदि रूप मिलते है हिन्दी में एक, दो, तीन चार, बारह पन्द्रह आदि रूप है।

अपूर्णांक बोधक विशेषण -

अपूर्णांक बोधक विशेषण के लिए अपभ्रंश में अद्ट §अड्ढ§ >पाउण, सवायअ तथा साड्ढ आदि प्रयोग होता है हिन्दी में आधा, पौन, सवाया ड्योढाआदि प्रयोग होता है।

क्रमबोधक विशेषण -

क्रमबोधक विशेषण के लिए अपभ्रंश में क्रमशः पढ्म बोस §तीय§, तीअ, चउत्थ, पंचम, छट्ट, सत्तवं, अट्टव, णववं, दसवं, एगारहवं, बारहवं, बोसवं, तीसवं आदि का प्रयोग होता है। हिन्दीमें पहला, दूसरा, तीसरा चौथा, पाँचवा, छठा सातवाँ, आठवाँ, नवाँ, दसवाँ ग्यारहवा बारहवाँ बीस, तीस आदि का प्रयोग होता है।

आवृत्ति बोधक विशेषण -

आवृत्तिबोधक विशेषण मे पूर्णांक बोधक संख्या को पूर्वपद बनाकर गुण उत्तरपद के साथ समास करने आवृत्ति वाचक विशेषण बनाने की पद्धति प्रा० भा० आ० में है। म० भा० आ० ने औरतदनन्तर अपभ्रंश और आ० भा० आ० ने भी उसी अनुसरण, किया। उदाहरण- दुण §प्रा० पैं ०§ < द्विगुण, दुणा § प्रा० पैं०§<द्विगुणाः। तिगुण § प्रा० पैं०§ त्रिगुण।

हिन्दी में ये संख्या के मूल रूप मे दुना जोड़कर बनते है। उदाहरण- दुगुना (दूना), तिगुना, चौगुना, पंचगुना आदि ।

समुदाय बोधक विशेषण -

समुदाय बोधक विशेषण अपभ्रंश में समूह या एक ही सूचना देने के लिए एक्कइ, दुक्कइ, एक्कल, दुइ, तिअ, चउक्क आदि विशेषणों का प्रयोग किया जाता है हिन्दी में दोनो तीनो, चारो ,पांचो आदि सब एक समुदाय के रूप में संख्या का बोध कराते है। ये संख्या के मूल रूप में "ओ" जोड़ने से निष्पन्न होते हैं ।

परिणाम बोधक विशेषण -

परिणाम बोधक अपभ्रंश मे एत्तिउ या एत्तिल या एत्तुल है, तेत्तिउ और तेत्तिल या तेत्तुल , जित्तिउ, जेत्तिउ या जेत्ततुल आदि है । हिन्दी में इतना उतना जितना आदि कहते हैं ।

इस प्रकार हिन्दी के अधिकांश विशेषण रूप अपभ्रंश विशेषणों के विकसित रूप हैं ।

अपभ्रंश और हिन्दी की क्रिया संबंधी व्याकरणिक कोटियों की तुलनात्मक समीक्षा करने से हमें यह ज्ञात होता है कि व्याकरणिक दृष्टिकोण से अपभ्रंश और हिन्दी का निकटतम सम्बन्ध है बिना किसी सन्देह के कहा जा सकता है कि हिन्दी की अधिकांश व्याकरणिक कोटियों का विकास अपभ्रंश की व्याकरणिक कोटियों

से हुआ है। यह अवश्य है कि संस्कृत - पालि - प्राकृत में व्याकरणिक कोटियाँ संयोगात्मक थीं। अपभ्रंश की व्याकरणिक कोटियाँ भी संयोगात्मक है। किन्तु अपभ्रंश की प्रवृत्ति वियोगात्मक की ओर बढ़ रही है।

क्रिया रचना में जो सरलीकरण की प्रवृत्ति पालि- प्राकृत से आरम्भ हुई उसका चरम विकास हिन्दी में मिलता है। संस्कृत -पालि प्राकृत -अपभ्रंश की तुलना में हिन्दी की क्रिया रचना सरलतम है। क्रिया में §1§ काल §2§ अर्थ §3§ अवस्था §4§ वाच्य §5§ प्रयोग §6§ लिंग §7§ वचन §8§ पुरूष की व्याकरणिक कोटियाँ होती हैं। इन व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि सभी हिन्दी की व्याकरणिक कोटियाँ अपभ्रंश व्याकरणिक कोटियों का विकास है।

अव्ययों में व्याकरणिक कोटियों द्वारा विकार नही होता है वास्तव में अव्ययों का विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के बाहर है क्योंकि अव्ययों की व्याकरणिक कोटियाँ नही होती हैं फिर भी अपभ्रंश का भी विवेचन कर दिया गया है क्योंकि हिन्दी के अधिकांश अव्यय रूप अपभ्रंश के अव्यय रूप के विकास हैं। इसलिए दोनों का विवेचन आवश्यक न होने पर भी किया गया है।

ग्रन्थ - सूची

1- अपभ्रंश भाषा का अध्ययन - डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, 1965 ई०, प्रथम संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाश, दिल्ली ।

2- अपभ्रंश भाषा और साहित्य- डॉ० देवेन्द्र कुमारजैन, 1965 ई०, प्रथम संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली ।

3- अपभ्रंश काव्य परम्परा और विद्यापति - डॉ० अंबादत्त पंत, 2026 वि० प्रथम संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वाराणसी ।

4- आचार्य हेमचन्द्र का अपभ्रंश व्याकरण - अनु० प्रो० शालिग्राम उपाध्याय, 1965 प्रथम संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी ।

5- अपभ्रंश साहित्य - हरिवंश कोछड़

6- प्राकृत - अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव- डॉ० तोमर

7- अपभ्रंश दर्पण - जगन्नाथ राय शर्मा

8- अपभ्रंश प्रकाश - देवेन्द्र कुमार

9- अपभ्रंश भाषा और व्याकरण - शिव सहाय पाठक

10- अपभ्रंश भाषा का व्याकरण और साहित्य - डा० रामगोपाल शर्मा "दिनेश", 1982 प्रथम संस्करण, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर ।

11- सूत्र शैली और अपभ्रंश व्याकरण - डॉ० परम मित्र शास्त्री । सं० 2024 वि०, प्रथम संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

12- हिस्टारिकल ग्रैमर आव अपभ्रंश - गजानन वासदेव तगारे

13- छन्दोऽनुशासन - हेमचन्द्र

14- प्राकृत भाषाओं का व्याकरण- पिशेल (अनु0 हेमचन्द्र) ।

15- प्राकृत शब्दानुशासन - त्रिविक्रम

16- प्राकृतसर्वस्व - मार्कण्डेय

17- प्राकृत प्रकाश - वररुचि

18- प्राकृत विमर्श - डॉ0 सरयूप्रसाद अग्रवाल

19- प्राकृत लक्षण - चण्ड

20- प्राकृत भाषा और उसका साहित्य -डॉ0 हरदेव बाहरी

21- प्राकृत व्याकरण - पी0 एल0 वैद्य

22- हिन्दी भाषा - डॉ0 भोलानाथ तिवारी, 1966 ई0, प्रथम संस्करण, किताब महल, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद ।

23- हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास- डॉ0उदयनारायण तिवारी, संवत्, 2018, द्वितीय संस्करण, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग ।

24- हिन्दी साहित्य का इतिहास- प्रो0 डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, 2 अक्टूबर, 1969 ई0, नवम् संस्करण, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद- ।

25- हिन्दी साहित्य का आदिकाल- डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1982 ई0, प्रथम संस्करण ।

26- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - डॉ0 नामवर सिंह, 1952ई0, प्रथम संस्करण, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद।

27– मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण – प्रो० माता बदल जायसवाल 1979 प्रथम संस्करण, महामति प्रकाशन, इलाहाबाद ।

28– हिन्दी भाषा और लिपि का विकास एवं स्वरूप – भवानी दत्त, उप्रेती , 1978 तृतीय परिवर्द्धित संस्करण, राय साहब राम दयाल अगरवाला, प्रयाग ।

29– हिन्दी व्याकरण – कामता प्रसाद गुरू, संवत् 2045 चौदहवाँ पुनर्मुद्रण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

30– हिन्दी ग्रामर – तगारे

31– हिन्दी ग्रामर – कैलाग

32– भारतीय आर्य भाषा– हि० अनु० –डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

33– भारत का भाषा सर्वेक्षण –हि० अनु० डॉ० उदय नारायण तिवारी

34– भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी – सुनीति कुमार चाटुर्ज्या

35– भाषा विज्ञान और हिन्दी – डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल

36– भाषा विज्ञान – डॉ० श्याम सुन्दर दास

कोश ग्रन्थ

1– हिन्दी साहित्य कोश भाग – संपादक डॉ० हरदेव बाहरी ~~धर्मवीर भारती~~ ।

2– अभिनव हिन्दी कोश – हरिशंकर शर्मा (गया प्रसाद एण्ड संस–आगरा)

3– अमर कोश – अमर सिंह

4- अँग्रेजी हिन्दी डिक्शनरी - डॉ० हरदेव बाहरी

5- ए डिक्शनरी आव हिन्दी लैंग्वेज - रे० जे० डी० वाटे

6- भाषा विज्ञान कोश - डॉ० भोलानाथ तिवारी

7- संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी - वी० एस० आप्टे ।

8- हिन्दी शब्द- सागर - श्याम सुन्दर दास ।
ना० प्र० सभा, काशी ।

9- हिन्दी शब्द संग्रह - मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव

10- हिन्दी राष्ट्र भाषा कोश - विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव ।

अलका गुप्ता